भारत सरकार
भारत का विधि आयोग

रिपोर्ट सं. 272

भारत में अधिकरणों की कानूनी संरचना : एक मूल्यांकन

अक्तूबर, 2017

डा.न्यायमूर्ति बलबीर सिंह चौहान
पूर्व न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय
अध्यक्ष
भारत का विधि आयोग
विधि एवं न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Dr. Justice B. S. Chauhan
Former judge, Supreme Court of India
Chairman
Law Commission of India
Ministry of Law and Justice
Government of India

अ.शा. सं. 6(3)299/2016-एल.सी.(एल.एस.) तारीख : 27 अक्तूबर, 2017

प्रिय श्री रविशंकर प्रसाद जी,

उच्चतम न्यायालय ने गुजरात ऊर्जा विकास निगम लि. बनाम एस्सर पावर लि., (2016 9 एस. सी. सी. 103 में भारत के विधि आयोग से अन्य बातों के साथ-साथ विभिन्न अधिकरणों की स्थापना के उद्देश्य और प्रक्रिया तथा ऐसे अधिकरणों के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति के निबंधनों और शर्तों को ध्यान में रखते हुए उनका गठन करने वाले विभिन्न अधिकरणों की कानूनी संरचना में किए जाने के लिए अपेक्षित परिवर्तनों पर विचार करने के लिए कहा है ।

आयोग ने हमारे देश में और विदेशों में अधिकरण तंत्र के कामकाज, पूर्वतर विधि आयोगों और विभिन्न समितियों की रिपोर्टों, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के निर्णयों तथा अधिकरण गठन करने वाली वर्तमान विधियों के विश्ले-ाण तथा उपबंधों पर, इस वि-ाय पर उपलब्ध सुसंगत आंकड़ों के साथ-साथ विचार किया । विधि आयोग ने विवेचन के बाद देश में अधिकरण तंत्र के कामकाज को सुधारने की विस्तृत चरण दर चरण प्रक्रिया दर्शाई है ।

मुझे 'भारत में अधिकरणों की कानूनी संरचना : एक मूल्यांकन' शी-ार्क आयोग की 272वीं रिपोर्ट केंद्र सरकार के विचारार्थ अग्रे-ाित करने का सौभाग्य मिला है ।

पूर्ण सम्मान के साथ,

भवदीय
ह0/-
(डा. न्यायमूर्ति बी. एस. चौहान)

श्री रविशंकर प्रसाद
माननीय विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार
शास्त्री भवन
नई दिल्ली - 110 001

· कमरा सं. 405, चतुर्थ तल, 'बी' विंग, लोक नायक भवन, खान मार्केट, नई दिल्ली - 110003/ Room No. 405. 4th Floor, 'B' Wingh, Khan Market, New Delhi - 110003 दूरभा-ा/ Tel. : 011-24654951 फैक्स/Fax : 24554950 ई-मेल/ e-mail : justicechauhan@gmail.com

रिपोर्ट सं. 272
भारत में अधिकरणों की कानूनी संरचना : एक मूल्यांकन

वि-नय-सूची

अध्याय	शी-र्षक	पृ-ठ
1.	भूमिका	4-10
2.	अधिकरण तंत्र : एक वैश्विक परिप्रेक्ष्य	11-19
3.	भारत में अधिकरण तंत्र	20-30
4.	पूर्व विधि आयोगों की सिफारिशों का पुनरावलोकन	31-38
5.	नियुक्ति, अर्हताओं, कार्यकाल और सेवा-शर्तों में एकरूपता	39-46
6.	संविधान के अधीन न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति	47-55
7.	उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में अपील	56-66
8.	उच्च न्यायालयों की अधिकारिता से बाहर उपचार	67-72
9.	आनुकल्पिक तंत्र द्वारा सभी न्यायालयों की अधिकारिता का अपवर्जन और न्याय तक पहुंच	73-79
10.	नि-क-र्ा और सिफारिशें	80-84
उपाबंध I –	वित्त अधिनियम, 2017 द्वारा विलय किए गए अधिकरण	85
उपाबंध II –	अधिकरणों के वि-नय में हटाए जाने के उपबंध	86-93
उपाबंध III –	वे अधिकरण जिनके विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय में होती है	94
उपाबंध IV –	वे अधिकरण जिनके विरुद्ध अपील उच्चतम न्यायालय में होती है	95
उपाबंध V –	वे अधिकरण जिनके विरुद्ध अपील, अपील अधिकरणों/ प्राधिकरणों में होती है ।	96-97
उपाबंध VI –	सिविल न्यायालयों की अधिकारिता को प्रतिबाधित करने वाले अधिनियम	98-99

अध्याय 1
भूमिका

1.1 ट्रिब्युनल (अर्थात् अधिकरण) शब्द 'ट्रिब्यून्स' से लिया गया है जिससे 'क्लासिकल रोमन रिपब्लिक के मजिस्ट्रेट' अभिप्रेत है । ट्रिब्युनल का उल्लेख 'ट्रिब्यून्स' के कार्यालय के रूप में किया जाता है अर्थात् राजतंत्र तथा अभिजात मजिस्ट्रेटों की मनमानी कार्यवाही से निम्नवर्गीय नागरिकों की रक्षा करने के कार्य से युक्त गणतंत्र के अधीन रोमन पदाधिकारी । साधारणतया अधिकरण ऐसा कोई व्यक्ति या संस्था होती है जिसके पास दावों या विवादों का निर्णय करने, न्यायनिर्णयन करने अथवा अवधारित करने का प्राधिकार होता है चाहे वह अधिकरण शी-र्क से पुकारा जाए अथवा नहीं ।[1]

1.2 'अधिकरण' एक ऐसा प्रशासनिक निकाय होता है जो न्यायिककल्प कर्तव्य करने के प्रयोजनार्थ स्थापित किया जाता है । प्रशासनिक अधिकरण न तो न्यायालय होता है और न ही कार्यपालक निकाय/इसका स्थान न्यायालय और प्रशासनिक निकाय के मध्य कहीं होता है । राज्य क्रियाकलापों में अभिवृद्धि के फलस्वरूप और न्याय की मांग में वृद्धि होने के कारण नये-नये अधिकारों के प्रवर्तन की उद्घो-णा की स्थिति की आकस्मिकताओं के परिणामस्वरूप अधिकरणों की स्थापना की गई ।[2]

1.3 न्याय-प्रशासन में विलंब उन सबसे बड़ी अड़चनों में से एक है जिसे अधिकरणों की स्थापना से निवारित करने में मदद मिली है ।[3] एच.डब्ल्यु. आर. वेड के अनुसार, ''बीसवीं शताब्दी के सामाजिक विधानों की मांग थी कि विशुद्ध रूप से प्रशासनिक कारणों से अधिकरण स्थापित किए जाएं ; उनसे शीघ्र, सस्ता और अधिक सुगम न्याय मिल सकता है, जो छोटे-छोटे अधिसंख्य दावों की कल्याण स्कीमों के प्रशासन के लिए अनिवार्य हैं । न्यायालयों और उत्पाद शुल्क आयुक्तों को तीन शताब्दियों पूर्व से अधिक न्यायिक शक्तियां दी गई थीं । कर अधिकरणों की स्थापना वस्तुतः 18वीं शताब्दी में हुई थी ।[4]

1.4 कालांतर में, न्यायनिर्णयन के ऐसे तंत्र की आवश्यकता उत्पन्न हो गई जो समाज की नई-नई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ज्यादा उपयुक्त हैं जो इतनी लंबी और मंहगी न हो जितनी न्यायालयों की होती है । अधिकरणों की रचना का मुख्य कारण न्याय प्रशासन में विलंब और बकाया काम के संकट को दूर करना था । अतः प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना विधिक उक्ति - **लेक्स डिलेशन्स सेम्पर एक्सोरेट** के प्रकाश में, जिसका अर्थ है, 'विधि हमेशा विलंब की निंदा करती

---

[1] वाकर, डेविड एम., आक्सफर्ड कम्पेनियन टु लॉ, ऑक्सफर्ड युनिवर्सिटी प्रेस आई. एस.बी.एन. 0-19-866110 - x , 1980 पृ. 1239.

[2] कागजी, एम.सी.जे., द एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ, मेट्रोपोलिटन बुक कं. लि., दिल्ली. तीसरा संस्करण, 1973, पृ-ठ 278 और 279.

[3] सिन्हा, एम. पी. 'ज्युडिशयल रिफार्म इन जस्टिस - डिलीवरी सिस्टम (2004) 4 एस. सी. सी. (जोर) 35.

[4] वेड, एच. डब्ल्यु. आर. तथा फोरसिथ, सी. एफ., एडमिनिस्ट्रटिव लॉ, ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, युनाईटेड किंगडम, 10वां संस्करण, 2009 पृ-ठ 773.

है', न्याय देने के तंत्र में विद्यमान बहुत बड़े दो-न को दूर करने के लिए की गई है ।[5]

1.5 सिविल मुकदमों के निपटारे में विलंब से बकाया मामलों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है और इस वि-नय में न्यायालय असहाय प्रतीत होते हैं । सामाजवादी समाज की रचना के उद्देश्य से आधुनिक सामन्टिवादी राज्य की आवश्यकताएं बहुत अधिक हैं ।'' राज्य **लैसेज केयर** के दर्शन का परित्याग करने के साथ-साथ तटस्थ नहीं रहा है और शक्तिशाली बन गया है जिससे हर क्षेत्र में हर आदमी प्रभावित होता है ।[6]

1.6 विभिन्न न्यायालयों में मामले लंबित होने की वजह से उत्पन्न स्थिति से निपटने के लिए घरेलू अधिकरण और अन्य अधिकरण विभिन्न कानूनों के अधीन स्थापित किए गए हैं जिन्हें इसमें इसके पश्चात् अधिकरण कहा गया है । विधिक परिप्रेक्ष्य में, अधिकरण घरेलू अधिकरण से भिन्न होता है । घरेलू अधिकरण से प्रशासनिक अभिकरणों के प्रति निर्देश होता है जो वृत्तिक आचरण को विनियमित करने के लिए तथा अन्वे-णात्मक और न्यायनिर्णयात्मक शक्तियों का प्रयोग करके सदस्यों में अनुशासन लागू करते हैं । जबकि अधिकरण न्यायिककल्प निकाय होते हैं जो विनिर्दि-ट वि-नयों से संबंधित विवादों का न्यायनिर्णय करने के लिए स्थापित किए जाते हैं । वे उन कानूनों के अनुसार अधिकारिता का प्रयोग करते हैं जिनके अधीन उनकी स्थापना होती है । इसी प्रकार प्रशासन के किसी अंग के कारण नागरिकों को होने वाली व्यथा की शिकायतों के बारे में लोकपाल कार्यवाही करता है ।[7]

1.7 कानूनी अधिकरणों की संख्या जितनी बढ़ती जाती है राज्य गतिविधियों में उतने ही दर्पण सामने आ जाते हैं क्योंकि विधान ने उन व्यक्तियों को प्रसुविधाएं प्रदान की हैं तथा नियंत्रण और प्रबंधन का प्रचार करने के लिए उनके रोजमर्रा के जीवन पर ध्यान दिया है, व्यक्ति और राज्य के बीच विवादों का विस्तार हुआ है । अधिकरण न्यायालयों से सस्ते (खर्च प्रभावी) होते हैं किंतु उनके गठन और कार्य न्यायालयों से भिन्न होते हैं । तथापि, अधिकरण विधि, तथ्य, नीति और विवेकाधिकार के समस्त सुसंगत मुद्दों पर विचार करने के बाद कार्य शुरू करने के लिए न्यायालय से अधिक उपयुक्त होता है ।[8]

1.8 चेन्टल स्टेविंग्स के अनुसार ''विविधता, सामंजस्य की कमी, प्रास्थिति की अनिश्चितता अंतरनिहित व्यन्टिक दुर्बलताओं के कारण जिनसे सैद्धांतिक विश्ले-ण और व्यावहारिक सुधार हुए हैं, इसलिए उन्नीसवीं शती में एक संस्था के तौर पर कानूनी प्रशासनिक अधिकरण के ऐतिहासिक विधिक संदर्भ में काफी मात्रा में समस्याएं आती हैं ।'' उन्होंने आगे कहा - ''अधिकरण'' पद कला का पद न होकर जो घरेलू निकायों के माध्यम से, जो क्लबों, सोसाइटियों और वृत्तियों को विनियमित करते हैं, नियमित न्यायालयों से लेकर अपने प्रशासनिक कर्तव्यों के अनुक्रम में विनिश्चय

---

[5] के. आई. विभूति, ''एडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिब्युनल्स एंड द हाई कोर्ट्स : एप्ली फार ज्युडिशयल रिव्यु'' 29 जे. आई.. एल. आई. 524 (1987).

[6] यथोक्त, नोट 2 ; पृ-ठ 271.

[7] इलियट, मार्क, बीटसन, जैक, मैथ्यूज, मारटिन, एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ : टैक्स एंड मैटेरियल्स, आक्सफर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, तृतीय संस्करण, 2005, पृ. 679.

[8] ग्रोव्ज, मैथ्यूज, ली, एच.पी. आस्ट्रेलियन एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ : फंडामेंटल्स, प्रिंसिपल्स एंड डोक्ट्रिन्स, कैम्ब्रज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क प्रथम संस्करण, 2007 पृ. 77.

करनेवाले मंत्रियों तक किसी विवाद निराकरण निकाय या प्रक्रिया के प्रति निर्देश है ।[9]

1.9 नील हॉके के अनुसार, ''प्रशासनिक अधिकरणों को प्रशासनिक न्यायालय कहा जा सकता है क्योंकि आम तौर पर उनका काम उन विवादों का निराकरण करना है जो विविध प्रकार की स्थितियों के कानूनी विनियमन से उत्पन्न होते हैं जिनमें से कुछ में प्रशासनिक अधिकरणों द्वारा विनिश्चय या अन्य कार्रवाई करनी होगी, अथवा प्राइवेट व्यक्तियों के बीच संबंध अंतर्ग्रस्त होगा ।''[10]

1.10 द फ्रैंक रिपोर्ट (1957) में अधिकरण के फायदों की पहचान इस प्रकार की गई है - सस्ता (खर्चे की प्रभावकारिता), सुगम्यता, बारीकियों से आजादी, अभियान और उनके वि-नय-विशे-न का विशे-नज्ञ ज्ञान । उसमें तीन प्रमुख सिद्धांत गिनाए गए हैं जो अधिकरणों के काम करने और योजना जांचों में लागू होने चाहिए । वे हैं - खुलापन, ऋजुता और नि-पक्षता । वे निम्नलिखित शब्दों में हैं :–

> ''अधिकरण साधारण न्यायालय नहीं होते है न ही वे सरकारी विभागों के अधीनस्थ होते हैं । अधिकांश शासकीय साक्ष्य से .... यह मत परिलक्षित प्रतीत होता है कि अधिकरणों को उचित रूप से प्रशासन तंत्र के अंग मानना चाहिए जिसके लिए सरकार का सूक्ष्म एवं सतत उत्तरदायित्व होना चाहिए । इसप्रकार उदाहरण के लिए, समाज सेवा के क्षेत्र में अधिकरण स्वयं सेवाओं के प्रशासन के सहायक माने जाएंगे । हम इस मत को स्वीकार नहीं करते । हम यह समझते हैं कि अधिकरणों को प्रशासन की मशीनरी मानने के बजाए न्यायनिर्णयन के लिए संसद् द्वारा उपलब्ध कराई गई मशीनरी मानना उचित होगा । अनिवार्य बिंदु यह है कि इन सब मामलों में, संसद् ने संबंधित विभाग से बाहर और स्वतंत्र या तो प्रथम प्रक्रम पर .... अथवा मंत्री के या विशे-न कानूनी स्थिति में - किसी पदाधिकारी के विनिश्चय के विरुद्ध अपील में विनिश्चय के लिए सोच-समझकर व्यवस्था की है .....। यद्यपि सुसंगत कानून सभी मामलों में अभिव्यक्त रूप से यह अधिनियमित नहीं करते कि अधिकरण में पदासीन सब व्यक्ति सरकारी सेवा से बाहर रहेंगे, विधान में अधिकरण शब्द में निःसंदेह यही लक्षणार्थ है और अधिकरणों की स्वतंत्रता के लिए उपबंध करने का संसद् का आशय स्प-ट एवं असंदिग्ध है''।[11]

1.11 रोमिन क्रेयके के अनुसार, ''अधिकरणों की प्रक्रिया साधारणतया ज्यादा तेज चलती है और न्यायालयों से कम औपचारिक होती हैं । वहां साक्ष्य के नियमों का अनुसरण करने की कोई अपेक्षा भी नहीं होती । अधिकरण साधारणतया न्यायालयों से सस्ते होते हैं तथा अधिकरण की सुनवाई में विधिक प्रतिनिधित्व के बारे में एक सीमा हो सकती है ।''[12]

1.12.रोब्सन के अनुसार, ''प्रशासनिक अधिकरण साधरण न्यायालयों की तुलना में अपना काम अधिक तेजी से करते हैं, अधिक सस्ता करते हैं और अधिक दक्षतापूर्ण ढंग से करते हैं..... अधिक

---

[9] स्टेविंग्स, चेंटल, लीगल फाउंडेशन्स आफ ट्रिव्युनल्स इन नाईन्थ सेंचुरी इंग्लैंड, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, प्रथम संस्करण, 2006 पृ-ठ 3.

[10] हॉके, नील, इन्ट्रोडक्शन टु एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ, केवेन्डिश पब्लिशिंग लिमिटेड, युनाइटेड किंग्डम, प्रथम संस्करण, 1998, पृ. 65.

[11] ड्रेवरी, गेविन, ''द ज्युडिसियलाइजेशन आफ एडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिव्युनल्स इन द यू. के. : फ्राम हेवार्ट टु लेगेट'' 28 टी.आर.ए.एस. 51 (2009).

[12] पूर्वोक्त नोट 7.

तकनीकी ज्ञान रखते हैं और सरकार से कमतर विद्वे-ा रखते हैं ..... अंतर्वलित सामाजिक हितों पर ज्यादा ध्यान देते हैं ..... विधान में समावि-ट सामाजिक नीति को अग्रसर करने में सजग प्रयास से विवादों का विनिश्चय करते हैं ।''[13]

1.13 अधिकरणों को रोजमर्रा के नाना प्रकार के वि-ायों के बारे में न्यायनिर्णय करने की शक्ति प्राप्त होती है । अधिकरण न्यायपालिका के बोझ को हल्का करने की कारगर मशीनरी के रूप में काम करते हैं । यह समझा जाता था कि न्यायालय अपनी विस्तृत प्रक्रियाओं के चलते, विधिपरक मोर्चे और प्रवृत्तियों के चलते संबंधित पक्षकारों को शीघ्र एवं सस्ता न्यायालय प्रदान करने में असमर्थ हैं । विशे-ा रूप से तकनीकी मामलों में यह महसूस किया जाता था कि कानूनों की प्रकृति के कारण निर्णय मंचों में ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता होती है जो इन विधियों के क्रियान्वयन का विशे-ाज्ञ ज्ञान रखते हों । अधिकरण शीघ्र, प्रभावी विकेंद्रीकृत न्याय के एकमात्र तंत्र के रूप में ही नहीं बल्कि विशे-ाज्ञ और विशे-ाीकृत क्षेत्रों में जानकारी रखने वाले तंत्र के रूप में भी उभरकर सामने आए ; पारम्परिक न्यायालयों के न्यायाधीशों में इस बात का अभाव महसूस किया गया ।[14] एम. सी. जे. कागजी के अनुसार, ''अधिकरण के समक्ष की कार्यवाहियों को न्यायिक कार्यवाही घोि-त करने वाले उपबंध, जो उन्हें कतिपय प्रक्रियात्मक मामलों में सिविल न्यायलय की शक्तियां प्रदान करते हैं, वे पक्षकारों की सुनवाई करने की अपेक्षा करते हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि अधिकरण से अपेक्षा की जाती है कि वह न्यायिक रूप से कार्यवाही करे, न कि मात्र विवेकपरक ढंग से ।''[15]

1.14 भारत के विधि आयोग ने अपनी 14वीं रिपोर्ट (1958) - ''न्याय प्रशासन में सुधार'' में अपील अधिकरण या केंद्र एवं राज्यों में अधिकरण की स्थापना की सिफारिश की थी । बाद में 'उच्च न्यायपालिका की संरचना और अधिकारिता' नामक अपनी 58वीं रिपोर्ट (1974) में विधि आयोग का आग्रह था कि पृथक उच्च शक्ति प्राप्त अधिकरण या आयोग सेवा के मामलों में कार्यवाही करने के लिए स्थापित किए जाने चाहिए । न्यायालय में जाना अंतिम आश्रय होना चाहिए ।

1.15 न्या. जे. सी. शाह की अध्यक्षता में गठित उच्च न्यायालय की बकाया समिति ने उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में लंबित सेवा मामलों में कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र अधिकरण स्थापित करने की सिफारिश की थी । बाद में, स्वर्ण सिंह समिति ने जो मूलभूत विधियों में अपेक्षित परिवर्तनों का अध्ययन करने के लिए गठित की गई थी, 1976 में सिफारिश की कि सेवा संबंधी मामलों का विनिश्चय करने के लिए राज्यों एवं केंद्र में दोनों जगह केंद्रीय विधि के अधीन प्रशासनिक अधिकरण स्थापित किए जा सकते हैं ।

1.16 स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिशों पर आधारित भाग XIV -क संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा जोड़ा गया जिसका शी-ार्क था - 'अधिकरण' । उसके द्वारा अनुच्छेद 323क के माध्यम से प्रशासनिक अधिकरणों तथा अनुच्छेद 323ख के अधीन अन्य वि-ायों के अधिकरणों'' की स्थापना के लिए उपबंध किया गया था । संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम 1976 के उद्देश्य और कारणों के कथन में वर्णित अधिकरणों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य

---

[13] पूर्वोक्त नोट 2, पृ-ठ 284 .

[14] जैन, एम.पी. जैन, एस. एन., प्रिंसिपल्स आफ एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ 1989, लेक्सिस नेक्सिस, इंडिया, 7वां संस्करण, 2011 पृ-ठ 1996.

[15] पूर्वोक्त नोट 2, पृ 279.

निम्नलिखित है --

> ''उच्च न्यायालयों में विशाल बकाया मामलों का बोझ कम करने के लिए तथा सामाजिक आर्थिक विकास और प्रगति के संदर्भ में सेवा मामलों, राजस्व मामलों और विशे-न महत्व के कुछ अन्य मामलों का शीघ्र निपटारा सुनिश्चित करने के लिए ऐसे मामलों में कार्यवाही करने के लिए प्रशासनिक तथा अन्य अधिकरणों के लिए उपबंध करना जबकि ऐसे मामलों के बारे में उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता को संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन परिरक्षित रखना समीचीन समझा जाता है । ''

1.17 प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम 1985 के अधिनियमन से विभिन्न न्यायालयों के समक्ष लंबित सेवा वि-नयक असंख्य मामले अधिकरणों की अधिकारिता के अंतर्गत लाए गए । अनुच्छेद 323क के अधीन सृजित प्रशासनिक अधिकरणों को भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 के तकनीकी सिद्धांतों से और सिविल प्रक्रिया संहिता 1998 की प्रक्रियात्मक जटिलताओं से मुक्त कर दिया गया है । किंतु साथ ही, अपनेविनिश्चयों के पुनर्विलोकन सहित कुछ मामलों के संबंध में सिविल न्यायालय की शक्तियां उनमें निहित करदी गई हैं तथा वे नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों से आबद्ध हैं ।[16]

1.18 अधिकरण को अपनीशक्ति का प्रयोग नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करके अथवा उन कानूनी उपबंधों के अनुसार जिनके अधीन अधिकरण स्थापित किया गया है, विवेकपूर्ण ढंग से करना होगा । किसी कानूनी प्राधिकरण के समक्ष विरोधी पक्षें के बीच मुकदमा हो सकता है जिसे उसका अवधारण करने के लिए विवेकपूर्ण ढंग से कार्यवाही करनी होगी । विरोधी पक्षों के बीच कोई मुकदमा न हो तो भी अधिकरण/प्राधिकरण को प्रजा के अधिकारों और दायित्वों को अवधारित करना हो सकता है । दोनों स्थितियों में, इसे न्यायिककल्प कार्य के रूप में जाना जाएगा । 'कल्प' शब्द से 'यथावत् नहीं' अभिप्रेत है । जहां कोई कानूनी प्राधिकरण विनिश्चय करने के लिए सशक्त होता है जिससे व्यक्तियों के अधिकार प्रभावित होते हैं और सुसंगत विधि के अधीन ऐसे प्राधिकरण से यह अपेक्षा की जाती है कि वह जांच करे और पक्षकारों को सुने तो ऐसा प्राधिकरण न्यायिककल्प होता है तथा उसके द्वारा दिया गया निर्णय न्यायिककल्प कार्य होता है ।''[17]

1.19 भारत के विधि आयोग ने उच्च न्यायालय बकाया मामले -- एक नई दृ-टि शी-र्क की अपनी 124वीं रिपोर्ट (1988) में उच्च न्यायालय बकाया मामले समिति (1969) की सिफारिशों पर दृ-टिपात करते हुए यह मत व्यक्त किया था कि--

> '1.15 मामलों का आना नियंत्रित करने के लिए उच्च न्यायालय की अधिकारिता को घटाने की दृ-टि से उच्च न्यायालय के अनुकल्प के रूप में विशे-ज्ञ अधिकरण सृजित करने का प्रथम बार एक ऐसा साधन होगा जिससे बकाया मामलों की समस्या को हल करने में अप्रत्यक्ष रूप से मदद मिल सकेगी.....।

---

[16] बसु, दुर्गा दास, 'कमेंट्री आन द कान्स्टीट्यूशन आफ इंडिया, लेक्सिस, नेक्सिस नई दिल्ली 8वां संस्करण, 2011 पृ. 10650, पश्चिम बंगाल राज्य ब.कमल सेन सुप्ता ; (2008) 8 एस. सी. सी. 612 भी देखिए ।

[17] क्वासी ज्युडिशयल ; न्यायमूर्ति (सेवानिवृत्त) शब्बीर अहमद निम्न पर उपलब्ध है - http://sja.gos.pk/assets/articles/Quasi%20Judicial.pdf (अंतिम विजिट 25.09.2017 को किया गया) ; रेक्स ब. इलैक्ट्रिसिटी कमिशनर्स (1924), 1 के. वी. 171. भी देखिए ।

1.21 ..... विधि आयोग का मत है कि जहां संभव हो, प्रचुर अपीली और व्यापक आरंभिक अधिकारिता, न्याय की क्वालिटी को क्षति पहुंचाए बिना, नियंत्रित की जाए या घटाई जाए .....।

1.27 सारांश यह है कि आयोग का दृ-टिकोण है कि अपीलों की संख्या घटाई जाए, विशे-ज्ञ न्यायालय/अधिकरणों की स्थापना की जाए और साथ ही साथ उच्च न्यायालय की अधिकारिता समाप्त की जाए, जिससे, वर्तमान विधि आयोग द्वारा प्रस्तुत रिपोर्टों को कायान्वित करके कार्यवाही में परिणत हो जाने पर, बहुत अतिशय आकलन पर भी उच्च न्यायालय में वर्तमान में दाखिल मामलों में लगभग 45% की कमी हो जाएगी ।' (रेखांकित किया गया)

1.20 कार्मिक, लोक व्यथा, विधि और न्याय वि-नयक विभाग से संबद्ध संसदीय स्थाई समिति ने प्रशासनिक अधिकरण (संशोधन) विधेयक, 2006 पर अपनी 17वीं रिपोर्ट के पैरा 13.3 में यह मत व्यक्त किया था कि ''..... उच्च न्यायालय में अपील के लिए उपबंध करने के पश्चात् वह प्रयोजन ही विफल हो जाएगा जिसके लिए केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण गठित किया गया था क्योंकि ये एक खास प्रयोजन के लिए गठित किए गए थे कि कर्मचारी शीघ्र उपचार पा सकें और उच्च न्यायालयों पर काम का अधिक बोझ न हो ।''

1.21 विधि आयोग ने ''एल. चन्द्र कुमार की रिविजिटेड बाई लारजर बेंच आफ सुप्रीम कोर्ट आफ इंडिया'' शी-र्क की 215वीं रिपोर्ट (2008) में यह उल्लेख किया था कि प्रशासनिक अधिकरणों को सेवा संबंधी मामलों के बारे में उच्च न्यायालयों के प्रभावी और वास्तविक प्रतिस्थानी के रूप में सोचा और गठित किया गया था । उच्च न्यायालयों की पुनर्विलोकन की शक्ति उच्चतम न्यायालय की शक्ति की भांति अलंध्य नहीं कही जा सकती । प्रशासनिक अधिकरण के स्थापन के पीछे अंतर्निहित उद्देश्य विफल हो जाएगा यदि उनके द्वारा न्यायनिर्णीत सब मामले संबंधित उच्च न्यायालय के समक्ष जाने होंगे । बहराल, आयोग ने ऐसा कोई स्प-टीकरण/कारण लेखबद्ध नहीं किया कि उच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन शक्ति किस प्रकार उच्चतम न्यायालय की शक्ति से कम अलंघनीय होगी, विशे-ाकर **एल. चन्द्र कुमार** बनाम **भारत संघ**[18] वाले मामले में सात सदस्यीय न्यायाधीशों की न्यायपीठ के निर्णय के पश्चात् ।

1.22 **गुजरात ऊर्जा विकास निगम लि.** बनाम **एस्सर पावर लि.**[19] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने नियुक्त व्यक्तियों, नियुक्ति की रीति, नियुक्ति की अवधि आदि, उच्चतम न्यायालय को सौंपी गई सांविधानिक भूमिका को प्रभावित करने वाली उच्चतम न्यायालय में दाखिल सामान्य अपीलों, उच्च न्यायालयों को छोड़कर अधिकरण के आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में सीधे कानूनी अपीलों, के बारे में सबसे निचले स्तर पर न्याय तक पहुंचने के लिए उतने ही प्रभावी आनुकल्पिक तंत्र की अनुपस्थिति में सब न्यायालयों की अधिकारिता को अपवर्जित करने के लिए अधिकरण से संबंधित विभिन्न मुद्दों के संबंध में पड़ताल करने और रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए आयोग से निर्देश किया था । वह निर्देश निम्नलिखित शब्दों में है --

''विधि आयोग के विचारार्थ प्रश्न निम्न प्रकार हैं :–

---

[18] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 1125.

[19] (2016) 9 एस. सी. सी. 103.

1. क्या नियुक्त व्यक्तियों, नियुक्ति की रीति, नियुक्ति की अवधि आदि के बारे में विभिन्न अधिकरणों का गठन करने वाली कानूनी संरचना में कोई परिवर्तन मद्रास बार एसोसिएशन (उक्त) में इस न्यायालय के निर्णय के प्रकाश में या विधि शासन को सबल बनाने के दृ-टिकोण से किसी अन्य विचारणा पर आवश्यक है ?

2. क्या इस न्यायालय में युक्तियुक्त समय के भीतर विनिश्चय दिए जाने की वांछनीयता को ध्यान में रखते हुए उच्चतम न्यायालय को सौंपी गई सांविधानिक भूमिका को प्रभावित किए बिना विधि के किसी प्रश्न पर या विधि के किसी सारवान प्रश्न पर जो रा-ट्रीय महत्व का या लोक महत्व का नहीं है, नेमी तौर पर अपीलों का उपबंध करना अनुज्ञेय और बांछनीय है ?

3. क्या अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध, उच्च न्यायालयों को छोड़कर सीधे उच्चतम न्यायालय में कानूनी अपीलें देश के सुदूर इलाकों में कक्षीकारों को न्याय तक पहुंचने में प्रभावित करती हैं ?

4. क्या निम्नतम स्तर पर न्याय तक पहुंचने के लिए बराबर प्रभावकारी तंत्र की अनुपस्थिति में सभी न्यायालयों की अधिकारिता को अपवर्जित करना वांछनीय है ? जैसाकि टी.डी.एस.ए.टी. अधिनियम (धारा 14 और 15) के उपबंधों में किया गया है ?

5. कोई अन्य पारिणामिक या संसक्त मुद्दा जो समुचित समझा जाए ?

1.23 इसी पृ-ठभूमि में, आयोग को अधिकरणों के गठन, उनके क्रमशः अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति और उनकी सेवा शर्तों के बारे में उच्चतम न्यायालय द्वारा पूछे गए प्रश्नों पर विचार करना और उनका उत्तर देना होगा । इसके अतिरिक्त, क्या संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालयों को प्रदत्त संविधान के बुनियादी तत्व न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को क्षीण किया जा सकता है अथवा छीना जासकता है और कक्षीकारों को अधिकरण की अधिकारिता और आदेश के विरुद्ध रिट अधिकारिता में उच्च न्यायालय में जाने के अधिकार से पूर्णतः वंचित किया जा सकता है तथा क्या ऐसे कक्षीकारों को अधिकरणों के आदेश के विरुद्ध कानूनी अपील का अधिकार नहीं होना चाहिए, क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन उपचारों का उपबंध करना स्वीकृततः अपील का अधिकार नहीं है बल्कि उच्चतम न्यायालय में जाने का एक साधन है और उच्चतम न्यायालय का यह विवेकाधिकार है कि वह याचिका को ग्रहण करे अथवा न करे ।

अध्याय 2
अधिकरण तंत्र : एक वैश्विक परिप्रेक्ष्य

2.1 प्रायः सभी देश अपने सांविधानिक ढांचे के भीतर अधिकरण वि-नयक विधियां बना चुके हैं । अनेक देशों में, जिनमें फ्रांस भी शामिल है, यद्यपि नियमित न्यायालयों से भिन्न न्यायनिर्णयन मंच न्यायनिर्णय का काम करते हैं फिर भी उसे न्यायिक कार्य नहीं समझा जाता है और इन अधिकरणों को न्यायालय नहीं समझा जाता । जहां तक युनाइटेड किंग्डम और भारत का संबंध है, नियमित सिविल और दंड न्यायालयों से भिन्न संस्थाओं द्वारा निर्वहन किए गए न्यायनिर्णय के कार्य न्यायालयों के अनुपूरक माने जाते हैं ।[20]

क. फ्रांस में अधिकरण तंत्र

2.2 फ्रांस न्यायिक प्रणाली में विशे-न अधिकरण के लिए उपबंध किया गया जो **ट्रिब्यूनल डेस कनफ्लिट्स** के नाम से जाना जाता है जो उन मतभेदों के निपटारे के लिए होते हैं जिनमें न्यायिक और प्रशासनिक दोनों कार्य अंतर्ग्रस्त होते हैं । इस अधिकरण के समक्ष आने वाले मामले जटिल होते हैं और उन पर प्रक्रिया के जटिल नियम लागू होते हैं ।[21] फ्रांस में, अंग्रेजी भा-ा-भा-ी देशों से भिन्न दोहरी विधिक प्रणाली है ।[22] तथापि न्यायिक पुनर्विलोकन फ्रांस में पूर्ण नहीं है क्योंकि कुछ प्रशासनिक कृत्य न्यायिक नियंत्रण की परिधि से बाहर होते हैं । साथ ही, फ्रांस में प्रशासनिक कृत्यों का न्यायिक पुनर्विलोकन समय-सीमा के अध्यधीन होता है ।[23]

2.3 **द काउंसील द ईटेट** की स्थापना एक व्यक्ति और राज्य के उन पदाधिकारियों के बीच विवाद के समाधान के लिए की गई थी जिन्होंने विधि का उल्लंघन करके कार्रवाई की है । कालांतर में तीन स्तरीय अधिकरणों का एक उचित तंत्र बनाया गया । **द काउंसील द ईटेट** को कार्यपालिक से न्यायिक या न्यायिककल्प निकाय में कार्यपालक कार्यों को समितियों में (अनुभागों) अंतरित करके उसके कार्यपालक कार्यों से धीरे-धीरे पृथक करके रूपांतरित कर दिया गया । उन्होंने न्यायालयों की भूमिका ग्रहण कर ली ।[24] फ्रांस में एडमिनिस्ट्रेटिफ मूल न्यायालय होते हैं जिनकी अधिकारिता व्यापक है और जिनके अंतर्गत प्रायः सभी प्रकार के प्रशासनिक मामले आते हैं । ट्रिब्युनल एडमिनिस्ट्रेटिफ और अन्य वैसी संस्थाओं के विनिश्चयों के खिलाफ के समक्ष अपील या पुनरीक्षण **काउंसील द ईटेट** फाइल किए जा सकते हैं ।

2.4 ट्रिब्युनल एडमिनिस्ट्रेटिफ के निर्णयों के विरुद्ध अपीलों पर **काउर एडमिनिस्ट्रेटिफ द अपेल** विचार करता है । किंतु उन्हें न तो नगरपालिका और केनटोनल निर्वाचनों की वैधता के प्रश्न/मुद्दे

---

[20] मलिक, लोकेन्द्र, लता, कुसुम ; कौर अवनीत, कांस्टीट्यूशनल गवर्नमेंट इन इंडिया (सत्यम् लॉ इंटरनेशनल, नई दिल्ली : 2016) पृ. 191.

[21] वारलेट, सी. ए. हेवरश्राफ, " द फ्रेंच जुडिशियल सिस्टम" 33 सी. एल. टी. 952 (1913).

[22] पूर्वोक्त 19, पृ. 190.

[23] जियाई बेकिर बुगुकम, " कामन प्रिंसिपल्स आफ जुडिशियल रिव्यु आफ एडमिनिस्ट्रेशन इन यूरोप ; ए कम्पेरेटिव स्टडी आफ फ्रांस, यू.के., इ.सी.एच.आर. एंड द ई.यू.5"एल.जे.आर.78 (दिसंबर, 2011).

[24] डीसेय, ए. वी., ला आफ द कंस्टिट्यूशन, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, यूनाईटेड किंग्डम, प्रथम संस्करण, 2013 पृ. 347.

वाली अपीलों पर विचार करने की अधिकारिता थी और न ही इस आधार पर विनियमों के विरुद्ध अपील पर विचार करने की अधिकारिता थी कि प्राधिकरण ने अपनी शक्तियों का अतिक्रमण किया है ।

2.5 कॉमन लॉ वाले देशों में, फ्रांस से भिन्न, 'प्रशासनिक न्यायनिर्णय करने वाले न्याय मंचों और न्यायिक न्यायनिर्णय के कार्य से युक्त न्यायमंचों के बीच बेहतर समन्वय है । प्रशासनिक न्याय मंच न्यायिक पर्यवेक्षण के अधीन काम करते हैं । भारत में, संविधान निर्माताओं ने फांसीसी प्रणाली को स्वीकार नहीं किया और उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति सौंप दी ।

ख. इंग्लैंड में अधिकरण तंत्र

2.6 अधिकरण इंग्लैंड की न्यायिक प्रणाली के सबसे महत्वपूर्ण स्तंभों में से एक है । विभिन्न मुद्दों के संबंध में जैसे सामाजिक सुरक्षा, संपत्ति अधिकार, नियोजन, आप्रवास, मनो स्वास्थ्य आदि के वि-नय में बहुत सारे अधिकरण गठित किए गए । अधिकांश अधिकरण राज्य के विरुद्ध नागरिकों के दावों के संबंध में हैं । उन अधिकरणों के उदाहरण जो युनाइटेड किंग्डम में काम करने हैं, नियोजन अधिकरण हैं जो वे निजी व्यक्तियों और संगठनों के बीच विवादों से संबंधित हैं । पट्टाधृति मूल्यांकन अधिकरण जो पट्टेदार और पट्टाकर्ता के विवादों के संबंध में है, सेवा प्रभारों या संपत्तियों के मूल्यांकन वि-नयक विवादों के बारे में हैं ।[25] इसके अलावा, अन्य अधिकरण भी हैं जो उनकी अपनी अधिकारिता के अंतर्गत आने वाले मामलों के वि-नय में हैं । इंग्लैंड में अधिकरणों और साधारण न्यायालयों के बीच उल्लेखनीय अंतर हैं । वे सारांश में निम्न प्रकार हैं ---

(i) सदस्यों को एक खास विशे-नज्ञता और अनुभव होता है । अधिकांश अधिकरणों की अध्यक्षता किसी वकील (कुछ मामलों में सेवारत न्यायाधीश), द्वारा की जाती है ; वह सामान्यतया उन वकीलेतर व्यक्तियों के साथ पीठासीन होता है/होती है जो या तो विशे-नीकृत अर्हताएं रखता/रखती हों या साधारण व्यक्ति या महिला के साथ जिसके पास विशे-नीकृत अर्हताएं हों ।

(ii) नम्यता अधिकरण को उसकी प्रक्रिया अधिकारिता के लक्षणों और उसके प्रयोक्ताओं की जरूरतों के अनुकूल बनाने के लिए विकसित करने तथा उसमें बदलाव करने में समर्थ बनाती है चाहे वे बिना प्रतिनिधित्व वाले व्यक्ति हों या विवेकशील शहरी संस्थाएं हों ।[26]

2.7 इंग्लैंड में अधिकरण ओल्ड एज पेंशन ऐक्ट, 1908 के अधीन स्थानीय पेंशन समिति के गठन से 20वीं शताब्दी में अनन्य न्यायिक निकाय के रूप में तथा नेशनल इंश्योरेंस ऐक्ट, 1911 के अधीन सम्राट के रूप में सामने आए । तब से अधिकरणों की न्यायिक स्थिति की मान्यता निरंतर बढ़ती रही है क्योंकि वे अपनी स्वयं की सुभिन्न पहचान बनाने में कामयाब रहे हैं ।[27]

2.8 1932 में, डोनोमोर समिति जो उन रक्षोपायों पर विचार करने के लिए गठित की गई थी जो न्यायिक तथा न्यायिककल्प विनिश्चयों के बारे में आवश्यक थे ताकि विधि की सर्वोच्चता एक

---

[25] क्रेय के, रोबिन, ट्रिव्युनल्स इन द कॉमन लॉ वर्ल्ड, द फेडरेशन प्रेस, युनाइटेड किंग्डम, 2008 ; पृ 20.

[26] यथोक्त ; पृ. 21.

[27] लीगल एक्शन ग्रुप, ''इंट्रोडक्शन टु ट्रिब्युनल्स'' 15(2011).

सांविधानिक सिद्धांत सुनिश्चित हो सके - ने अपनी रिपोर्ट[28] प्रस्तुत की । समिति की सिफारिश थी कि न्यायिक विनिश्चय साधारण न्यायालयों पर छोड़ देने चाहिए । अधिकरणों की स्थापना विशे-न आधारों पर होनी चाहिए और तभी की जानी चाहिए जब साधारण न्यायालयों के ऊपर उनके फायदे प्रश्नातीत हों, कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया जाए और न्यायालयों को यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त शक्ति दी जाए कि वे अपने अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत काम करें ।[29] समिति का मत था कि--

> ''quasi (कल्प) शब्द को जब विधिक शब्द से पहले जोड़ा जाए तो साधारणतया उसका अर्थ यह है कि वह चीज जो उस शब्द को वर्णित करती है उसमें उस विधिक शब्द को द्योतित और लक्षित करने वाले लक्षण हैं, किंतु यह कि उसमें वे सारे लक्षण नहीं होते ।''

2.9 1957 में, फ्रेंक्स समिति[30] ने अनेक खास सिफारिशें की थीं । उनमें से अधिकांश को अधिकरण और जांच अधिनियम, 1958 द्वारा कार्यान्वित किया गया । वे सिफारिशें निम्नलिखित हैं :–

(i) संविधान पर और विभिन्न अधिकरणों के कामकाज पर नजर रखने के लिए अधिकरण परि-द् की स्थापना (एक सलाहकार गैर विभागीय लोक निकाय) की जाए । अधिकरणों के अध्यक्ष की नियुक्ति लार्ड चांसलर द्वारा की जाए । अधिकरण के सदस्य मंत्रियों के स्थान पर अधिकरण परि-द् द्वारा नियुक्त किए जाएं ; इस सिफारिश को नामंजूर कर दिया गया हालांकि मंत्रियों को सदस्यता के बारे में किन्हीं साधारण सिफारिशों को ध्यान में रखना, जिन्हें परि-द् प्रस्तुत करे, अनिवार्य था ।

(ii) अधिकरण का अध्यक्ष विधितः अर्हित हो, कुछ प्रकार के अधिकरणों के संबंध में इसे कार्यान्वित किया गया, किंतु अन्य में नहीं ।

(iii) अधिकरण अपने विनिश्चय की लिखित सूचना दे और उसके कारण बताए । 1958 के अधिनियम के अनुसार यह अधिकरणों पर छोड़ दिया गया कि वे अनुरोध पर अपने कारण बताएं ।

(iv) सुनवाई साधारणतया सार्वजनिक हों ।

(v) विधि के बिंदुओं पर उच्च न्यायालय में अपील करने का अधिकार हो ; इस सिफारिश को 'मामले के उदाहरण की प्रक्रिया के द्वारा व्यापक रूप से कार्यान्वित किया गया था ।[31]

(vi) पक्षकारों को विधिक प्रतिनिधित्व का हक हो और विधिक सहायता उपलब्ध हो ।

2.10 2001 में, सर एंड्रू लेगेट समिति ने वर्तमान अधिकरण तंत्र की समीक्षा की और अपनी रिपोर्ट पेश की जिसका शी-र्क था -- 'ट्रिब्युनल्स फार यूजर्स - वन सिस्टम, वन सर्विस' उस रिपोर्ट

---

[28] पूर्वोक्त ।

[29] पूर्वोक्त पृ. 4.

[30] पूर्वोक्त नोट- 11, पृ. 47.

[31] पूर्वोक्त नोट 10, पृ. 47.

के अनुसार न्यायालय तंत्र में अनुभूत कमियां थीं । जैसे विलंब, खर्चा, बारीकियां और प्रारूपिकता, विशे-नज्ञता का अभाव, रूढ़िवादी (अनुदार) सामाजिक और राजनीतिक दृ-टिकोण । इसप्रकार, एक स्वतंत्र, एकीकृत प्रशासन और सामंजस्यपूर्ण प्रक्रियाएं सुदृढ़ बनाने के आशय से एक नवीन स्वतंत्र, सामंजस्यपूर्ण, वृत्तिक, सस्ती, प्रयोक्ता मैत्रीपूर्ण तथा संरचनात्मक रूप से परि-कृत अधिकरण प्रणाली प्रस्तावित की गई । रिपोर्ट में अन्य बातों के साथ-साथ ये सुझाव दिए गए थे कि --

क. लार्ड चांसलर को अधिकरण में सारी नियुक्तियों का उत्तरदायित्व ग्रहण करना चाहिए (परामर्श से, जैसा आवश्यक हो)

ख. अधिकरण तंत्र को ऐसी संरचना में खंडों में विभक्त किया जाना चाहिए जो वि-नय-वस्तु के अनुसार प्रयोक्ता को तुरंत प्रकट हो जाएं

ग. सदस्यों को एक विनिर्दि-ट खंड में नियुक्त किया जाना चाहिए और उनमें प्रशिक्षण के पश्चात् अन्य खंडों में पीठासीन होने की योग्यता हो ।

घ. सभी अधिकरणों के विनिश्चयों के विरुद्ध अपील का एक मार्ग होना चाहिए जो एकल अपील खंड हो ।

ङ. नौ प्रथम स्तरीय खंडों में से हरेक के लिए अध्यक्ष होना चाहिए । जहां तक संभव हो पूर्णकालिक नियुक्तियां होनी चाहिए । वे सामान्यतया सर्किट न्यायाधीश या वरि-ठ वकील हों ।

च. एक अधिकरण सेवा समिति हो जो सर्वोच्च गुणता का सेवा दृ-टिकोण पैदा करे तथा प्रयोक्ता के प्रति जवाबदेह हो ।

छ. अधिकरण सेवा, न्यायालय सेवा से पृथक, लार्ड चांसलर के विभाग की एक कार्यपालक एजेंसी होनी चाहिए ।

2.11 ब्रिटिश संसद ने ट्रिब्युनल्स, कोर्ट्स एंड एन्फोर्समेंट ऐक्ट, 2007 अधिनियमित किया । इस अधिनियम के द्वारा एकल अधिकरण प्रणाली के बजाए, एकीकृत अपील संरचना के लिए उपबंध करने के साथ-साथ दो सामान्य अधिकरणों की एक नई प्रणाली प्रारंभ की गई । दो नए अधिकरणों को वर्तमान अधिकरण की अधिकारिता अंतरित करने की शक्ति लार्ड चांसलर को दी गई । उसे नए अधिकरणों को प्रशासनिक सहायता प्रदान करने का साधारण कर्तव्य भी सौंपा गया । नव सृजित अधिकरणों को सामान्य प्रशासनिक सहायता देने के लिए 'ट्रांसफोर्मिंग पब्लिक सर्विस' नामक एक अधिकरण सेवा स्थापित की गई ।[32]

ग. अमेरिका में अधिकरण प्रणाली

2.12 अमेरिका का उच्चतम न्यायालय साधारणतया अपील न्यायालय समझा जाता है क्योंकि वह राज्य के उच्चतम न्यायालयों समेत देश के सभी अवर न्यायालयों के विनिश्चयों का पुनर्विलोकन करता है ।[33] शक्ति प्रथक्करण के सिद्धांत का कड़ाई से पालन करने के कारण वह प्रशासनिक न्यायनिर्णयन का काम नहीं करता ।

---

[32] न्याय मंत्रालय, ब्रिटिश संसद् द्वारा तैयार 'एक्सप्लेनेटरी नोट्स टु द ट्रिब्युनल्स, कोर्ट्स एंड एन्फोर्समेंट ऐक्ट, 2007 से लिया गया उद्धरण ।

[33] आउटलाइन आफ द यू. एस. लीगल सिस्टम, 28 बी.आई.आर.पी.यु.एस.डी.एस. (2004).

2.13 अमेरिकी संविधान के अनुसार, न्यायिक शक्ति प्रशासनिक निकायों में निहित नहीं की जा सकती क्योंकि वे न्यायालय नहीं होते । प्रशासनिक अधिकरणों की शक्ति न्यायिक नहीं होती बल्कि न्यायिक कल्प होती है । न्यायिक शक्तियों के अनिवार्य लक्षण हैं विनिश्चयों की अंतिमता, राज्य की दो अन्य शाखाओं अर्थात् कार्यपालिका और विधायिका के किसी भी हस्तक्षेप से स्वतंत्र ।

2.14 प्रशासनिक अधिकरण बहुत सारी समस्याओं पर काम करते हैं जिनमें विशे-ाज्ञ ज्ञान और अनुभव अपेक्षित हैं । संयुक्त राज्य अमेरिका ने एक नैसर्गिक विकास क्रम का अनुसरण किया है । अमेरिकी अधिवक्ता संघ ने प्रशासनिक विधि पर 1933 में एक विशे-ा समिति गठित की । विशे-ा समिति की रिपोर्ट के अनुसार प्रशासनिक अभिकरणों के ऊपर और अधिक न्यायिक नियंत्रण की अपेक्षा की गई । इसके परिणामस्वरूप रा-ट्रपति रुजवेल्ट ने प्रशासनिक विधि के क्षेत्र में प्रक्रियागत सुधारों की आवश्यकता के बारे में अन्वे-ाण करने के लिए सन् 1939 में अटर्नी जनरल समिति की नियुक्ति की । समिति की रिपोर्ट के आधार पर प्रशासनिक प्रक्रिया अधिनियम, 1946 अधिनियमित किया गया । वह अमेरिका में प्रशासनिक कार्यवाही के न्यायिक नियंत्रण के वि-ाय में एक कानूनी संहिता है ।

2.15 यह अधिनियम प्रशासनिक विधि के विकास में एक बहुत बड़ी ऐतिहासिक घटना है । विभिन्न कार्य करते समय अपनाई जाने वाली प्रक्रिया और न्यायिक पुनर्विलोकन के निश्चित उपायों को इस अधिनियम में संहिताबद्ध किया गया है । इस विधान के द्वारा प्रशासनिक निकायों के विनिश्चयों का पुनर्विलोकन केवल विधि के प्रश्न पर और कानूनों के निर्वचन पर करने के लिए सशक्त किया गया है 1 तथापि, उच्चतम न्यायालय ने स्प-ट किया है कि उपबंधों का शाब्दिक निर्वचन नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे न्यायिक पुनर्विलोकन की गुंजाईश नगण्य हो जाएगी ।

घ. कनाड़ा में अधिकरण प्रणाली

2.16 कनाड़ा में प्रशासनिक न्याय क्षेत्र बहुत विस्तृत है और सुस्थापित है । वहां अधिकरण प्रणाली सुभिन्न स्वरूप और प्रभाव के चलते कनाड़ा के न्यायतंत्र के दो स्तंभों में से एक समझी जाती है ।[34] किंतु अधिकरण प्रणाली की स्थापना एक हाल की घटना है । इसे विस्तारशील अर्थव्यवस्था, सामाजिक कार्यक्रमों के प्रशासनिक पहलुओं को विनियमित करने के लिए स्थापित किया गया था ।[35]

2.17 कनाडा में प्रशासनिक अधिकरण परिसंघीय और प्रांतीय सरकारों की ओरसे विनिश्चय करते हैं जब ऐसा करना ऐसी सरकारों के लिए व्यावहारिक या समुचित नहीं होता । अधिकरणों की स्थापना 'सशक्तिकरण विधान' नामक परिसंघीय या प्रांतीय विधान द्वारा की जाती है 1 अधिकरण सामान्यतया आयोग या बोर्ड के रूप में जाने जाते हैं । वे अत्यंत विधिक प्रकार के मुद्दों पर विनिश्चय करते हैं । वे लोगों के अपने बीच या लोगों और सरकार के बीच विवादों का भी निपटारा करते हैं । न्यायालय उनके विनिश्चयों का पुनर्विलोकन कर सकते हैं । क्योंकि अधिकरण तथ्यों का पता लगाते हैं और उन्हें स्वीय अधिकारों को प्रभावित करने की शक्ति प्राप्त होती हैं और वे प्रायः न्यायिककल्प

[34] पूर्वोक्त नोट 20, पृ.7.

[35] पूर्वोक्त, पृ. 9.

दिखाई पड़ते हैं ।[36]

2.18 प्रशासनिक अधिकरण स्वतंत्र होते हैं और विशे-ीकृत सरकारी अभिकरण होते हैं जो विधायी नीति को कार्यान्वित करने के लिए परिसंघीय या प्रांतीय विधान के अधीन स्थापित किए जाते हैं । ऐसी एजेंसियों में नियुक्तियां प्रायः आर्डर इन कौंसिल द्वारा की जाती है । सदस्यों को साधारणतया एक क्षेत्र विशे-ा में उनकी विशे-ाज्ञता और उनके अनुभव के लिए चुना जाता है । इसे विधान द्वारा विनियमित किया जाता है ।

2.19 विभिन्न प्रकार के प्रशासनिक अधिकरण और बोर्ड विधियों और विनियमों के निर्वचन और प्रवर्तन से संबंधित विवादों का निपटारा करते हैं जैसे रोजगार बीमा या निर्योग्यता प्रसुविधाओं, शरणार्थी दावों की हकदारी और मानव अधिकार प्राप्त करना । प्रशासनिक अधिकरण न्यायालयों से कम औपचारिक होते हैं और वे न्यायपालिका के अंग नहीं होते । फिर भी कनाडा समाज में विवाद हल करने की दिशा में एक अनिवार्य भूमिका अदा करते हैं । प्रशासनिक अधिकरणों के विनिश्चयों का पुनर्विलोकन न्यायालय द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए किया जा सकता है कि अधिकरण नि-पक्ष और विधि के अनुसार काम करें ।[37]

2.20 अनेक प्रशासानिक अधिकरण परस्पर विरोधी अधिकारों और बाध्यताओं को अवधारित करने के लिए तथा विवाद के पक्षकारों के बीच अधिकार और हक प्रदान करने के लिए पक्षों की सुनवाई करते हैं । बहुत से अधिकरणों को साक्षियों एवं अभिलेखों को समन करने की तथा शपथ के अधीन साक्ष्य लेने की व्यापक शक्तियां प्राप्त होती हैं । ये अधिकरण या तो प्रत्यक्षतः अपने समर्थकारी विधान से प्राप्त करते हैं या अप्रत्यक्ष रूप से अधिकरण प्रक्रिया वि-नयक साधारण विधियों से । कुछ अधिकरणों के बारे में प्रक्रिया के अनेकों कानून या नियम लागू होते हैं । उदाहरणार्थ, आनटारियो चाइल्ड एंड फेमिली सर्विसेज रिव्यु बोर्ड अपनी शक्तियां चाइल्ड एंड फेमिली सर्विसेज ऐक्ट, 1990, इंटरकंटरी अडोप्शन ऐक्ट, 1998 और एजुकेशन ऐक्ट 1990 से ग्रहण करता है ।

2.21 जहां अपील का अधिकार नहीं दिया जाता अथवा जब कोई कानून विनिर्दि-ट तौर पर उसका नि-ोध करता है वहां भी कनाडा संविधान का यह सिद्धांत कि वरि-ठ न्यायालयों को किसी भी प्रशासनिक अधिकरण के कार्य का पुनर्विलोकन करने की अधिकारिता है अर्थात् न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्राप्त है, और वे प्रायः इस बात पर ध्यान केंद्रित नहीं करते कि क्या अधिकरण द्वारा किया गया विनिश्चय सही विनिश्चय है अथवा नहीं, बल्कि यह कि क्या विनिश्चय सही ढंग से किया गया है और अपने सशक्तकरण विधान की परिधि के अंतर्गत किया गया है । न्यायालय प्रशासनिक विनिश्चयों का पुनर्विलोकन उनकी युक्तियुक्तता की कसौटी पर करते हैं । यदि कोई अधिकरण अपनी अधिकारिता के बाहर काम करता है या युक्तियुक्त रूप से काम नहीं करता है, तो वरि-ठ न्यायालय उसके विनिश्चय को अपास्त कर सकता है और मामले को पुनः अवधारण के लिए वापस भेज सकता है । कुछ मामलों में, वह अधिकरण के नि-कर्-ा को बदलकर अपना नि-कर्-ा रख सकता है । फिर भी यदि विनिश्चय सही ढंग से किया गया है अर्थात् प्रक्रिया का पालन करते हुए किया गया है तो तथ्यों को उचित रूप से और अधिकरण की शक्ति के अंतर्गत

---

[36] कनाडा में प्रशासनिक अधिकरण - http://www.thecanadianencyclopedia.ca/en/article/administrative-tribunals/ (अंतिम विजिट 31.07.20178 को किया गया)

[37] कनाडाज़ कोर्ट सिस्टम डी.जे.सी. 12 (2015).

मानते हुए न्यायालय अधिकरण के तथ्य के नि-कर्-ा को उलटता नहीं है और किसी विनिश्चय को तभी उलटेगा जब उसने विधि की गलती की हो अथवा मामले का विनिश्चय करते समय अनुचित रूप से कार्यवाही की हो । कनाडा का फेडरल न्यायालय जो पदानुक्रम में कनाडा के उच्चतम न्यायालय से ठीक नीचे होता है, अधिकरणों द्वारा किए गए विनिश्चयों के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई करता है ।

2.22 **रेजिडेंशियल टेनेंसीज ऐक्ट के मामल में**[38] कनाडा उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अधिकरण न्यायपालिका में निहित मूल कार्यों और न्यायिक शक्ति को छीन नहीं सकते । जब विवाद की प्रकृति सिविल है तो मामले की सुनवाई न्यायपालिका द्वारा ही की जाएगी न कि न्यायिककल्प अधिकरण द्वारा ।

2.23 प्रशासनिक अधिकरण अनेक प्रकार के कार्य करते हैं जिनमें शोध और सिफारिशें भी शामिल हैं (जैसे विधि सुधार आयोग), नियम निर्माता और नीति विकास (जैसे कनाडा रेडियो टेलिविजन तथा दूरसंचार आयोग तथा प्रांतीय प्रतिभूति आयोग), अनुदान नियतन (जैसे कनाडा कौंसिल फार द आर्ट्स एंड रीजनल डिवलपमेंट एजेंसीज), न्यायनिर्णयन (जैसे, श्रमिक संबंध बोर्ड, मकानमालिक और किरायेदार बोर्ड, आप्रवास और शरणार्थी बोर्ड, नगरपालिका बोर्ड तथा मानव अधिकार अधिकरण) तथा मानक निर्धारण (जैसे, पर्यावरण आकलन बोर्ड, कर्मकार प्रतिकर बोर्ड तथा स्वास्थ्य और सुरक्षा आयोग) । इन स्थाई एजेंसियों के अतिरिक्त, तदर्थ प्रशासनिक अधिकरण भी होते हैं जैसे मध्यस्थ और जांच आयोग जो विनिर्दि-ट वि-नय-वस्तु के संबंध में कार्य करते हैं । कुछ अधिनियम और उनके अधीन काम करने वाले अधिकरण नीचे तालिका में दिए गए हैं :–

तालिका

क्र. सं.	अधिनियम	अधिकरण
1.	द कनाडियन एग्रीकल्चरल प्रोडक्ट्स ऐक्ट, 1983	कनाडियन एग्रीकल्चरल रिव्यु ट्रिव्युनल
2.	द कनाडियन ह्यूमन राइट्स ऐक्ट, 1977	कनाडियन ह्यूमन राइट्स ट्रिव्युनल
3.	द सिविल रिजोलूशन ट्रिब्युनल ऐक्ट, 1977	सिविल रिजोलूशन ट्रिव्युनल
4.	द प्रोटेक्टिंग कनाडियन कोन्डोमिनियम ऐक्ट, 2015	आंटारियो कनाडियन कोंडोमिनियम अथारिटी
5.	द रेजिडेंशियल टेनेंसीज, 2006	मकान मालिक और किरायेदार बोर्ड
6.	द ऑन्टारियो एनर्जी बोर्ड ऐक्ट, 1978	ऑन्टारियो एनर्जी बोर्ड
7.	द ऑन्टारियो लेबर रिलेशन्स, एम्पलायमेंट ऐक्ट, 1995	ऑन्टारियो लेबर रिलेशन बोर्ड
8.	द ऑन्टारियो सिक्युरिटीज एंड द कमोडीटीज फ्यूचर्स	ऑन्टारियो सिक्युरिटीज कमीशन

[38] 1981 (1) एस.सी.आर. ; यह भी देखिए - **मेसी फर्गुसन इंडस्ट. लि.** बनाम **एस्क** ; 1981(2) एस. सी. आर. 413.

	ऐक्ट, 1990	
9.	द पब्लिक सर्विस आफ आन्टारियो ऐक्ट, 2006	पब्लिक सर्विस ग्रीवांसेज बोर्ड
10.	द वर्कप्लेस सेफ्टी एंड इंश्योरेंस ऐक्ट, 1998	वर्कप्लेस सेफ्टी एंड इंश्योरेंस अपील्स ट्रिब्युनल
11.	चाइल्ड एंड फेमिली सर्विसेज ऐक्ट, 1990	ऑन्टारियो चाइल्स एंड फेमिली सर्विसेज रिव्यु बोर्ड
12.	द ऑन्टारियो हेरिटेज ऐक्ट, 1990	द कन्जरवेशन रिव्यु बोर्ड

ङ. आस्ट्रलिया में अधिकरण प्रणाली

2.24 अधिकरण आस्ट्रेलियाई न्याय-प्रणाली के एक महत्वपूर्ण अंग हैं । वे नागरिकों के हितों पर प्रभाव डालने वाले सरकारी विनिश्चयों का स्वतंत्र और नि-पक्ष पुनर्विलोकन सुलभ कराते हैं । वे मुकदमों से बोझिल सिविल न्यायालय तंत्र के भार को भी कम करते हैं । वे पूरे आस्ट्रेलिया में नागरिकों और निगमों को अपेक्षाकृत सरल, सस्ते, तीव्र और नि-पक्ष न्याय सेवा प्रदान करते हैं ।[39]

2.25 1975 में, आस्ट्रेलिया सरकार ने बहुत सारे सरकारी विनिश्चयों का पुनर्विलोकन करने के लिए साधारण प्रशासनिक अधिकरण के रूप में प्रशासनिक (अपील) अधिकरण स्थापित किया जिसके अंतर्गत हैं - सामाजिक सुरक्षा, वरि-ठ नागरिकों के हक, रा-ट्रमंडल कर्मचारी प्रतिकर, कराधान, प्रवासन, सूचना की स्वतंत्रता, निगम, बीमा, मत्स्यपालन और अन्य अनेक क्षेत्र । रा-ट्रमंडल द्वारा स्थापित अन्य प्रशासनिक अधिकरणों के अंतर्गत सामाजिक सुरक्षा (अपील) अधिकरण, वेटरंस रिव्यु बोर्ड और प्रवासन तथा शरणार्थी पुनर्विलोकन अधिकरण, नेशनल नेटिव टाइटल ट्रिव्युनल और सुपरएनुएशन ट्रिब्युनल ।

2.26 राज्यों में अनेक प्रकार के अधिकरण हैं जो सरकारों के प्रशासनिक विनिश्चयों का पुनर्विलोकन करते हैं । विक्टोरियन सिविल एंड एडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिव्युनल को अनेक प्रकार के निजी विवाद हल करने की अधिकारिता है । न्यु साउथ वेल्स में प्रशासनिक विनिश्चय अधिकरण को निजी विवादों के बारे में सीमित अधिकारिता प्राप्त है । कुछ अधिकरण, जैसे न्यु साउथ वेल्स के उपभोक्ता, व्यापारी और किरायेदारी अधिकरण को प्रधानतः निजी विवाद जैसे भवन और किरायेदारी विवाद से सरोकार है । रा-ट्रमंडल अधिकरण पूर्णतः प्रशासनिक अधिकरण हैं जबकि राज्य अधिकरण प्रशासनिक एवं सिविल दोनों है ।[40] अनेक आस्ट्रेलियाई राज्यों में जैसे क्वींसलैंड और न्यु साउथवेल्स में अधिकरण लघुवाद न्यायालय की समकक्ष हैसियत में काम करते हैं । अपील न्यायालय उच्चतम न्यायालय का एक अंग है । यह सर्वोच्च एवं जिला न्यायालयों के विरुद्ध सभी अपीलों की सुनवाई

[39] द डिवलपमेंट आफ ट्रिब्युनल इन आस्ट्रेलिया, : https://www.mcgirrtech.com/developmentof-tribunals-in-australia/ डिवलपमेंट आफ ट्रिब्युनल्स इन आस्ट्रेलिया पर उपलब्ध (अंतिम विजिट 7.8.2017 को किया गया)

[40] ट्रिब्युनल्स इन आस्ट्रेलिया ; देयर वेल्स एंड रेसपेंसमिलिटीज, : http://www.aat.gov.au/aboutthe-aat/engagement/speeches-and-papers/the-honourable-justice-garry-downes-am-formerpre/tribunals-in-australia-their-roles-and-responsib (07.08.2017 को अंतिम विजिट किया गया ।

अधिकरण के रूप में करता है ।[41]

कुछ अधिनियम और उनके अधीन काम करने वाले अधिकरण नीचे तालिका में दिए गए हैं :–

तालिका

अधिनियम	अधिकरण
एडमिनिस्ट्रेटिव अपील्स ट्रिब्युनल्स ऐक्ट, 1975	एडमिनिस्ट्रेटिव अपील ट्रिब्युनल
इक्वल अपोरचुनिटी ऐक्ट, 1984	इक्वल अपोरचुनिटी ट्रिब्युनल
माइग्रेशन ऐक्ट, 1958	माइग्रेशन रिव्यु ट्रिब्युनल
सिविल एंड एडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिब्युनल ऐक्ट, 2013	न्यु साउथ वेल्स सिविल एंड एडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिब्युनल
रिसोर्स मेनेजमेंट एंड प्लानिंग अपील ट्रिब्युनल ला ऐक्ट, 1993	रिसोर्स मेनेजमेंट एंड प्लानिंग अपील ट्रिब्युनल
स्टेट एडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिब्युनल ऐक्ट, 2004	स्टेट एडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिब्युनल आफ वैस्टर्न आस्ट्रेलिया
विक्टोरियन सिविल एंड एडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिब्युनल ऐक्ट, 1998	विक्टोरियन सिविल एंड एडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिब्युनल
वर्कर्स रिहेविलिटेशन एंड कन्सीलिएशन ऐक्ट, 1988	वर्कर्स रिहेबिलिटेशन एंड कन्सीलिएशन ट्रिब्युनल

[41] क्वींसलेंड कोर्टस, : http://www.courts.qld.gov.au/courts/court-of-appeal पर उपलब्ध (7.8.2017 को अंतिम विजिट) किया गया ।

अध्याय 3

भारत में अधिकरण तंत्र

3.1 भारत में न्याय देने का कार्य कॉमन लॉ प्रणाली के ढांचे पर नियमित रूप से स्थापित न्यायालयों को सौंपा गया है । भारत में अधिकरणों का इतिहास पीछे सन् 1941[42] तक दिखाई पड़ता है जब प्रथम अधिकरण आयकर (अपील) अधिकरण के रूप में स्थापित किया गया था । किंतु अधिकरणों की स्थापना न्यायालयों का बोझ हल्का करने के लिए विनिश्चयों में तीव्रता लाने के लिए तथा एक ऐसा न्यायमंच प्रदानकरने के लिए की गई थी जो अधिकरण की अधिकारिता के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में वकीलों और विशे-नज्ञों के माध्यम से काम करें । संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा देश में विवादों के न्यायनिर्णयन में विराट परिवर्तन लाया गया था । इसके द्वारा भारत के संविधान में अनुच्छेद 323क और 323ख अंतःस्थापित किए गए थे जिनके माध्यम से, उपखंडों में विनिर्दि-ट वि-नयों का न्यायनिर्णयन करने के लिए संसद् एवं राज्य विधानमंडलों द्वारा प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना का लक्ष्य पूरा किया जाना संभव हो ।[43]

3.2 अनुच्छेद 323क और अनुच्छेद 323ख में अंतर है, क्योंकि अनुच्छेद 323क संसद् को अनन्य शक्ति प्रदान करता है और अनुच्छेद 323ख संबंधित राज्य विधानमंडल को शक्ति देता है । यह अनुच्छेद समवर्ती प्रकृति का है जिसके द्वारा संसद् और राज्य विधानमंडल, विधि द्वारा, इनमें विनिर्दि-ट वि-नयों की बाबत अधिकरण गठित कर सकते हैं । संविधान के अनुच्छेद 323ख से संलग्न स्प-टीकरण से यह प्रकट है । इन दोनों अनुच्छेदों के उपबंधों को प्रभावी रूप दिया जाना है चाहे संविधान में अन्य कोई उपबंध हो या तत्समय प्रवृत्त अन्य कोई विधि हो ।

3.3 भारत में न्याय तंत्र के तीन स्तर हैं । अवर न्यायालयों में सिवाय उन वि-नयों के जो अभिव्यक्त रूपसे या विवक्षित तौर पर वर्जित हैं, सभी मामलों में आरंभिक अधिकारिता निहित है । उच्च न्यायालयों को परमाधिकार रिट जारी करने की अधिकारिता के साथ-साथ संबंधित राज्यों में अपीली और पुनरीक्षण अधिकारिता प्राप्त है । कुछ उच्च न्यायालयों को आरंभिक अधिकारिता प्राप्त हैं । उच्च न्यायालय कुछ अधिकरणों द्वारा दिए गए निर्णयों के विरुद्ध अपील रिट याचिका ग्रहण करते हैं । उच्चतम न्यायालय को अनुच्छेद 131 के अधीन आरंभिक अधिकारिता दी गई है (दो या अधिक राज्यों अथवा भारत सरकार और एक या अधिक राज्यों के बीच विवाद की दशा में अथवा भारत के रा-ट्रपति और उपरा-ट्रपति के निर्वाचन से उत्पन्न होने वाले विवादों की दशा में) तथा अनुच्छेद 143 के अधीन सलाहकारी अधिकारिता प्राप्त है जहां भारत के रा-ट्रपति जनसाधारण के महत्व के तथ्य या विधि के मुद्दे विशे-ा पर न्यायालय की राय ले सकते हैं ।

3.4 सामाजिक और अन्य वैसे ही क्षेत्रों में सरकारी क्रियाकलाप के विस्तार के साथ-साथ विभिन्न क्षेत्रों में सरकार द्वारा चलाए जा रहे वाणिज्यिक उद्यमों और क्रियाकलापों के फलस्वरूप उन व्यक्तियों की सेवाओं का लाभ उठाने की आवश्यकता उत्पन्न हो गई है जो प्रभावी और शीघ्र न्याय देने के लिए विशे-ीकृत क्षेत्रों में ज्ञान रखते हैं क्योंकि न्यायालयों द्वारा न्याय प्रशासन के पारंपरिक

---

[42] ता. 19 नवंबर, 2011 को केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण की चंडीगढ़ न्यायपीठ की स्वर्ण जयंती की पूर्व संध्या पर चंडीगढ़ न्यायिक अकादमी में दिया गया न्या. डी. के. जैन का भा-ाण ।

[43] सरयु सतीश, ''भारत में अधिकरण तंत्र- बढ़ती महत्ता बल्कि बढ़ती प्रभावोत्पादकता'' डब्ल्यु एल. आर. 2.

ढंग में बदलते परिदृश्य में, उत्पन्न होने वाले जटिल मुद्दों से निपटने के लिए ऐसी विशे-ज्ञता का अभाव होता है ।[44]

क. न्यायमूर्ति रेन्किन समिति की रिपोर्ट-1924

3.5 सिविल वादों, अपीलों, पुनरीक्षण आवेदनों और अन्य सिविल मुकदमों के निपटारे में भारत के न्यायालयों द्वारा अनुसरित मूल और विशे-ज्ञ विधि प्रवर्तन और प्रभाव, चाहे अधिनियमित हो या नहीं, के बारे में छानबीन .....[45] समिति ने अपनी रिपोर्ट पेश कर लंबित मामलों की समस्या से निपटने के लिए विभिन्न सुधार सुझाए क्योंकि निर्णय में विलंब और बकाया मामले की समस्या स्वातंत्र्यपूर्व काल में भी थी ।

ख. प्रशासनिक सुधार आयोग-1966

3.6 भारत के प्रशासनिक सुधार आयोग ने विभिन्न क्षेत्रों में प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना की संभावनाओं का पता लगाने के लिए प्रशासनिक अधिकरणों परएक अध्ययन दल गठित किया । अध्ययन दल ने 1969 में सिफारिश की कि पदच्युति ; पद से हटाने और पंक्ति में अनवनति के प्रमुख दंडों के आदेशों के संबंध में अंतिम न्यायनिर्णयन प्राधिकरण के रूप में काम करने के लिए सिविल सेवा अधिकरण स्थापित किए जाएं ।

ग. वांचू समिति - 1970

3.7 समिति ने राज्य वित्तीय विधियों के प्रशासन में एक आनुकल्पिक विवाद हल के रूप में काम करने के लिए आयकर समझौता आयोग की स्थापना के लिए सिफारिश की जिसका मुख्य उद्देश्य राजस्व प्राप्ति को बढ़ाना था । यह महसूस किया गया कि समझौते और परिनिर्धारण के लिए उपबंध होना चाहिए जो नि-पक्ष, त्वरित और स्वतंत्र हो ।

3.8 समिति ने प्रत्यक्ष कर समझौता अधिकरण की स्थापना की सिफारिश की जो नि-पक्ष और शीघ्र विनिश्चय सुनिश्चित करे । आगे सिफारिश की कि समझौता निकाय का गठन ऐसा हो जो नि-ठावान और विस्तृत ज्ञान तथा अनुभव वाले अधिकारियों को अधिकरण में कार्य करना स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित करे । उसके सदस्यों की प्रास्थिति और वेतन के बारे में वही सिफारिश की गई जो केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के सदस्यों के हैं ।[46]

घ. उच्च न्यायालयों के बकाया मामलों की समिति की रिपोर्ट - 1972

3.9 1969, न्यायमूर्ति जे. सी. शाह समिति जिसे आम तौर पर उच्च न्यायालय बकाया समिति कहा जाता है, संघ सरकार द्वारा गठित की गई थी । सरकार ने कहा था कि उच्चतम न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों में लंबित सरकारी सेवकों द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाओं के अधिक संख्या में लंबित होने की दृ-टि से सरकारी सेवकों के सेवा मामलों में अनन्य रूप से कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र अधिकरण स्थापित करने की तात्कालिक आवश्यकता है ।

---

[44] आर. सी. सक्सेना, ''भारत में अधिकरणों द्वारा न्यायनिर्णयन'' 37.2 जे.आई.एल.आई. 223 (1995).

[45] जेनसन, एरिक गिलबर्ट और हैलर, थामस सी. बीयोंड कामन नोलेज : इम्पीरियल अप्रोचेज ; द रूल आफ लॉ, स्टेंफर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 2003, पृ. 157.

[46] वाटिका फार्मस् प्रा. लि. बनाम भारत संघ, (2008) 216 सी.टी.आर. दिल्ली 37.

3.10 विधि आयोग ने अपनी 58वीं रिपोर्ट (1974) में, जिसका शीर्षक था - उच्च न्यायपालिका की संरचना और अधिकारिता, न्याय प्रशासन में सुधार विषयक सभी पहलुओं पर विचार किया था जिनके अंतर्गत न्यायालयों में मामलों के निपटारे में विलंब का प्रश्न भी शामिल था । आयोग की सिफारिश थी कि एक पृथक उच्च शक्ति प्राप्त अधिकरण या आयोग सेवा संबंधी मामलों के लिए स्थापित किया जाए और यह कि मुकदमेबाजी अंतिम उपाय होना चाहिए क्योंकि उच्चतर न्यायालयों में बकाया मामलों का बोझ कम करना नितांत जरूरी है ।

ङ. स्वर्ण सिंह समिति रिपोर्ट - 1976

3.11 कल्याण की विचारधारा को स्वीकार करने पर लोक सेवाओं और लोक सेवकों की संख्या में अनगिनत वृद्धि हुई । न्यायालय मुख्यतः उच्च न्यायालयों में सेवा मामलों की बाढ़ आ गई । अतः स्वर्ण सिंह समिति ने सिफारिश की कि संविधान के अधीन न्यायनिर्णयन तंत्र के अंगस्वरूप प्रशासनिक अधिकरण स्थापित किए जाएं ।[47] समिति ने आगे यह भी सिफारिश की कि भारतीय विधि व्यवस्था में विलंब से निपटने के लिए तीन मुख्य क्षेत्रों में अधिकरण स्थापित किए जाएं । उसने यह भी सिफारिश की कि अधिकरण के विनिश्चय संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय द्वारा संवीक्षा के अध्यधीन होने चाहिए । अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय की और संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालयों की रिट अधिकारिता समेत अन्य न्यायालयों की अधिकारिता वर्जित कर दी जाए ।[48] समिति के सुझाव सारांश में नीचे दिए गए हैं :–

(i) सेवा शर्तों संबंधी मामलों का विनिश्चय करने के लिए राज्य स्तर पर और केंद्र में दोनों जगह प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना केंद्रीय विधि के अधीन की जाए ।

(ii) श्रम न्यायालयों और औद्योगिक अधिकरणों के विरुद्ध अपीलों के लिए अखिल भारतीय श्रम (अपील) अधिकरण स्थापित करने के लिए उपबंध किया जाए ।

(iii) राजस्व, भूमि सुधार, शहरी संपत्ति की अधिकतम सीमा, खाद्यान्न और अन्य आवश्यक वस्तुओं के प्रापन और वितरण विषयक विवाद अधिकरणों द्वारा विनिश्चित किए जाएं ।

च. प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की पृष्ठभूमि और महत्ता :

3.12 अधिकरण स्थापित करने के पीछे उद्देश्य न्याय देने के लिए एक प्रभावकारी और त्वरित न्यायमंच की व्यवस्था करना था ; किंतु ऐसे न्यायमंचों के आदेशों के विरुद्ध फाइल की जाने वाली नेमी अपीलें उच्चतम न्यायालय के सांविधानिक स्वरूप को बाधित करती है और इस प्रकार उच्चतम न्यायालय की प्रभावशाली कार्य प्रणाली को छिन्न-भिन्न करती है क्योंकि वे उच्चतम न्यायालय के प्रभावी कार्यकरण को प्रभावित करती हैं क्योंकि इन मामलों में अपीलों में सदा जनसाधारण के महत्व का प्रश्न नहीं उठाया जाता । प्रधानतः उच्चतम न्यायालय से सांविधानिक महत्व के मामलों और जनसाधारण के महत्व का सारवान विधि प्रश्न उठाने वाले मामलों में कार्यवाही की जाने की प्रत्याशा की जाती है । अत्यधिक बोझ के कारण उच्चतम न्यायालय ऐसे मामलों पर विचार करने में असमर्थ

---

[47] के. सी. जोशी, ''कांस्टीट्यूशनल स्टेटस आफ ट्रिब्युनल्स'' 41 : 1 जे. आई. एल. आई. 116 (1999).

[48] तिरुवेंगडम, अरुण के., ''द आक्सफर्ड हेंडबुक आफ द इंडियन कांस्टीट्यूशन 414 (आक्सफर्ड प्रेस, यूनाइटेड किंग्डम - प्रथम संस्करण, 2016).

होता है ।

3.13 'अधिकरण' शब्द को परिभानित नहीं किया गया है, किंतु ऐसे भी मामले होते हैं जिनमें न्यायालयों ने अधिकरणों की अत्यावश्यकता बताई है । **जसवंत शुगर मिल्स लि., मेरठ** बनाम **लक्ष्मीचंद**[49] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यह तय करने के लिए कि क्या न्यायिक रूप से काम करनेवाला प्राधिकरण अधिकरण है या नहीं, प्रधान कसौटी यह है कि क्या उसमें किसी न्यायालय का साज-सामान निहित है, जैसे मामलों का अवधारण करने का प्राधिकार, साक्षियों को हाजिर होने के लिए विवश करने का प्राधिकार, साक्ष्य के अनिवार्य सिद्धांतों का अनुसरण करने का कर्तव्य और दंड अधिरोपित करने की शक्ति निहित है ।

3.14 इनमें से अधिकांश अधिकरण/प्राधिकरण एक प्रकार के न्यायालय होते हैं जो न्यायिक एवं न्यायिककल्प प्रकृति के कार्य करते हैं जिनमें न्यायालय के साज-सामान होते हैं । न्याय और नि-पक्ष कार्यवाही सुनिश्चित करने के लिए इनमें न्यायालय के अनेक साज-सामान होते हैं ; और इनमें तीव्र एवं सस्ता न्याय सुनिश्चित करने के लिए नियमित न्यायालय की बारीकियां नहीं होती किंतु इनमें कार्य-प्रणाली में लचीलापन होता है । न्यायिक शब्द की **रोयल अक्वेरियम एंड समर एंड विन्टर गार्डन सोसाइटी** बनाम **पारकिंसन**[50] वाले मामले में इस प्रकार की गई थी :–

> 'न्यायिक' शब्द के दो अर्थ हैं । यह न्यायालय में किसी न्यायाधीश द्वारा या न्यायमूर्तियों द्वारा प्रयोक्तव्य कर्तव्यों के निर्वहन के प्रति निर्देश कर सकता है, अथवा प्रशासनिक कर्तव्यों के प्रति जो किसी न्यायालय में किए जाने जरूरी नहीं हैं, किंतु जिनके संबंध में यह आवश्यक है कि न्यायिक मस्ति-क हो अर्थात् ऐसा मस्ति-क काम करे जो यह तय करे कि विचाराधीन मामले के संबंध में क्या नि-पक्ष और न्यायसंगत है ।

3.15 अनुच्छेद 136 के अर्थ में अधिकरण की मूलभूत कसौटी यह है कि न्यायनिर्णयन प्राधिकरण (न्यायालय से भिन्न) में राज्य की न्यायिक शक्ति निहित होती है । **असोसिएटेड सीमेंट कं. लि.** बनाम **पी. एन. शर्मा**[51] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जो प्रक्रिया न्यायालय द्वारा अपनाई जाती है वह विहित होती है और शक्तियों का प्रयोग करते समय न्यायालय को उस प्रक्रिया के अनुरूप चलना होता है जबकि दूसरी ओर जो प्रक्रिया अधिकरणों को अपनानी होती है वह हो सकता है हमेशा से कड़ाई से विहित न की गई हो । उसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ''न्यायालय और अधिकरण दोनों में सामान्य मूलभूत और बुनियादी बात यह है कि वे न्यायिक कार्य करते हैं और न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं जो एक प्रभुता संपन्न राज्य में निहित होती हैं ।'' अधिकरण के पास न्यायालय का सारा नहीं पर कुछ साज-सामान अवश्य होता है ।

3.16 **दुर्गा शंकर मेहता** बनाम **रघुराज सिंह**[52] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि अनुच्छेद 136 के अनुसार 'अधिकरण' शब्द में न्यायालय जैसा कुछ भी अभिप्रेत नहीं है किंतु इस शब्द में सब न्यायनिर्णयन निकाय आते हैं बशर्ते कि उनका गठन

---

[49] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 677.

[50] 1892) 1 क्वींस बेंच 431 (452).

[51] ए. आई. आर. 1965 एस.सी. 1595.

[52] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 520.

प्रशासनिक या विधायी कार्यों का निर्वहन करने से सुभिन्न न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करने के लिए राज्य द्वारा किया गया हो ।

3.17 **भारत बैंक लिमिटेड दिल्ली** बनाम **भारत बैंक लिमिटेड दिल्ली के कर्मचारिवृंद**[53] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि यदि अधिकरण कानून द्वारा बनाया गया है और वह विशे-ा अधिनियम के उपबंधों का अनुपालन करता है और जब उसमें न्यायालय के कार्य निहित होते हैं तथा न्यायालय का आवश्यक साज-सामान होता है तो अधिकरण के अधिनिर्णय को संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन चुनौती दी जा सकती है । दूसरी ओर **असोसिएटेड सीमेंट कं. लि.** बनाम **पी. एन. शर्मा**[54] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करने का एकाधिकार अकेले न्यायालयों का नहीं है और इस प्रकार न्यायालय के साज-सामान को निहित करना अधिकरण का एक अनिवार्य तत्व नहीं है ।

3.18 **किहोतो होलोहन** बनाम **श्री जेचिल्हु**[55], वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्व निर्णय -**हरिनगर शुगर मिल्स लि.** बनाम **श्यामसुन्दर झुनझुनवाला**[56] में यह तय करने की कसौटी बताई थी कि न्यायनिर्णयन शक्तियों का प्रयोग करने वाला प्राधिकरण अधिकरण है अथवा नहीं :–

> 'कोई ऐसा मुकदमा होता है जिसमें एक पक्षकार प्रतिज्ञान करता है और दूसरा इनकार करता है तथा उसके पक्षकारों के अधिकारों और बाध्यताओं के विवाद का विनिश्चय करना आवश्यक होता है तथा उस प्राधिकरण से उसके बारे में विनिश्चय करने के लिए निवेदन किया जाता है ।
>
> सब अधिकरण न्यायालय नहीं होते । यद्यपि, सब न्यायालय अधिकरण होते हैं । 'न्यायालय' शब्द का प्रयोग उन अधिकरणों को पदाभिहित करने के लिए किया जाता है जो न्याय प्रशासन के लिए एक संगठित राज्य में स्थापित किए जाते हैं । न्याय प्रशासन से अधिकारों को कायम और अक्षुण्ण रखने के लिए तथा गलतियों को दंडित करने के लिए राज्य की न्यायिक शक्ति का प्रयोग अभिप्रेत है । जब कभी किसी अधिकार का अतिलंघन होता है या कोई क्षति होती है तो न्यायालय न्याय उस व्यवस्था को पुनः स्थापित करते हैं जो गड़बड़ा जाती है ।'

3.19 न्यायालय और अधिकरण के बीच अंतर विवाद के निपटारे की रीति का होता है । फिर भी उच्चतम न्यायालय ने **वीरेन्द्र कुमार सत्यवादी** बनाम **पंजाब राज्य**[57] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया था --

> ''न्यायालय को न्यायिककल्प अधिकरण से जो सुभिन्न करता है वह यह है कि न्यायालय विवाद का विनिश्चय एक न्यायिक रीति से करने और पक्षकारों के अधिकारों को निश्चायक निर्णय में घोि-त करने का होता है । न्यायिक रीति से विनिश्चय करने में होता यह है कि

---

[53] ए. आई. आर. 1950 एस. सी. 188.
[54] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1595.
[55] ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 412.
[56] ए. आई. आर. 1961 एस.सी. 1669.
[57] ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 153.

पक्षकारों को अपने दावे की पुन्टि में सुने जाने का तथा उसके सबूत में साक्ष्य पेश करने का अधिकार होता है और उस प्राधिकरण की ओर से बाध्यता भी अभिप्रेत होती है कि वह पेश किए गए साक्ष्य का विचार करके तथा विधि के अनुसार विनिश्चय करे । अतः जब प्रश्न उठता है कि क्या किसी अधिनियम द्वारा सृजित प्राधिकरण न्यायालय है जब न्यायिककल्प अधिकरण से सुभिन्न है । विनिश्चय यह किया जाना है कि क्या अधिनियम के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए उसमें न्यायालय के सभी तत्व विद्यमान हैं ।''

3.20 अधिकरण प्रायः विशे-न विधियों के अधीन आने वाले मामलों में कार्यवाही करते हैं । अतः वे न्यायालय के बाहर विशे-न न्यायनिर्णय प्रदान करते हैं । **गुजरात राज्य** बनाम **गुजरात राजस्व अधिकरण अधिवक्ता संघ**[58] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि :–

'..... किसी अधिनियम विशे-न/नियमावली से यह तय होगा कि क्या किसी अधिकरण विशे-न के कार्य न्यायालयों के कार्यों के समरूप हैं । न्यायालय मूलभूत न्याय प्रशासन का काम करते हैं । जहां दो विरोधी पक्षों में मुकदमा होता है और कानूनी प्राधिकरण से उनके उस विवाद को विनिश्चय करने की अपेक्षा की जाती है वहां ऐसा प्राधिकरण न्यायिक कल्प प्राधिकरण कहा जा सकता है । अर्थात् ऐसी स्थिति होती है जहां (क) किसी कानूनी प्राधिकरण को कोई काम करने के लिए किसी कानून के अधीन सशक्त किया जाता है, (ख) ऐसे प्राधिकरण के आदेश से प्रजा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा तथा (ग) हालांकि दो परस्पर विरोधी पक्षों के बीच कोई मुकदमा नहीं होता और मुकाबला प्राधिकरण एवं प्रजा के बीच होता है तथा (घ) कानूनी प्राधिकरण से कानून के अधीन न्यायिक रूप से काम करने की अपेक्षा की जाती है ; उक्त प्राधिकरण का विनिश्चय न्यायिक कल्प विनिश्चय होता है । किसी प्राधिकरण को तब न्यायिककल्प प्राधिकरण कहा जासकता है जब उसमें न्यायालय के कुछ लक्षण या साज-सामान होते हैं , सब नहीं । यदि किसी प्राधिकरण को सी. पी. सी. अर्थात् सिविल प्रक्रिया संहिता या दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन कुछ शक्तियां प्रदत्त की जाती हैं किंतु उसमें राज्य की न्यायिक शक्तियां न्यस्त नहीं की जाती हैं तो उसे न्यायालय नहीं माना जा सकता ।'

3.21 प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 द्वारा अधिकरण अस्तित्व में आए जो विभिन्न वि-नयों में कार्यवाही करने के लिए अनुच्छेद 323क(2) में अनुध्यात किए गए थे । यह अधिनियम विनिर्दि-ट रूप से उपबंध करता है कि यह निम्नलिखित को लागू होगा --

(i) नौसेना, थलसेना या वायुसेवा का अथवा संघ के किसी अन्य सशस्त्र बल का सदस्य;

(ii) उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय का कोई अधिकारी या सेवक ;

(iii) संसद् के किसी भी सदन के सचिवालय कर्मचारियों में अथवा किसी भी राज्य विधानमंडल के सचिवालय कर्मचारियों में या उसके किसी भी सदन में नियुक्त व्यक्ति अथवा, ऐसे संघीय राज्यक्षेत्र की दशा में, जिसमें विधानमंडल है, उस विधानमंडल में नियुक्त कोई व्यक्ति । बाद में 1987 में अवर न्यायालयों के अधिकारी एवं सेवक भी अधिनियम की परिधि से अपवर्जित कर दिए गए ।

---

[58] (2012) 10 एस.सी.सी. 353.

यह अधिनियम तीन प्रकार के प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना के लिए उपबंध करता है :–

(i) केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण,

(ii) राज्य प्रशासनिक अधिकरण ; और

(iii) संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण ।

3.22 सेवा संबंधी वि-नयों से संबंधित विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए न्यायालय की प्रक्रियाओं में विलंब के कारण विशे-ीकृत निकाय अपेक्षित है । **कमलकांती दत्ता** बनाम **भारत संघ**[59] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि--

> ''विभिन्न सेवाओं के सदस्यों में परस्पर होने वाले विवादों से भिन्न कुछ अन्य मुकदमों के क्षेत्र हैं जहां यह सिद्धांत कि लोक नीति के लिए यह अपेक्षित है कि समस्त मुकदमेबाजी का अंत अवश्य हो, अधिक बल के साथ प्रयुक्त किया जा सकता है । लोक सेवकों को न्यायालय कक्षों के संघर्-ा में अपना समय और ऊर्जा लगाने के लिए न खींचा जाए अथवा अपेक्षित न किया जाए । उसके द्वारा उनका ध्यान जनता से हटाकर निजी मामलों में न बदला जाए उनके परस्पर विवाद एकीकरण के उनके विवेक को प्रभावित करते हैं जिसके बिना कोई भी संस्था कारगर ढंग से काम नहीं कर सकती । केंद्र में एक सर्वोच्च अधिकरण के साथ राज्य सकारों द्वारा सेवा अधिकरणों का गठन, जो व्यापक रूप से सेवा शर्तें से संबद्ध संविवादों के अंतिम निर्णायक हों, जिसके अंतर्गत उनकी ज्यो-ठता काभी उलझा हुआ प्रश्न शामिल है, न्यायालयों को सेवा मामलों में रिट याचिकाओं और अपीलों की बाढ़ से बचा सकता है, । ऐसे अधिकरणों की कार्यवाहियों में अनौपचारिकता की गुणता हो सकती है और यदि वे साक्ष्य के कड़े नियमों से बांधे नहीं गए तो वे समाधान पैदा कर सकते हैं । वे इस प्रकार ज्यादा लोगों को संतु-ट करेंगे और कम लोगों को निराश करेंगे ।''

3.23 उच्चतम न्यायालय के समक्ष **ए. के. बेहरा** बनाम **भारत संघ**[60] वाले मामले में प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 12(2) की विवेचना का मौका आया था । उसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उक्त उपबंध, एक या अधिक सदस्यों को उपाध्यक्ष बनाने के लिए समुचित सरकार को समर्थ बनाता है तथा इस प्रकार पदाभिहित सदस्यों को ऐसी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए और अध्यक्ष के ऐसे कार्य करने के लिए जो उसे प्रत्यायोजित किए जाएं, हक प्रदान करता है, ''न्यायपालिका की या प्रशासनिक अधिकरणों की स्वाधीनता के सिद्धांत को न-ट करने वाला माना जा सकता है ।''

3.24 तथापि, न्यायमूर्ति दलवीर भंडारी ने अपनी विसम्मत राय में यह अभिनिर्धारित किया था :–

> ''53. ..... प्रशासनिक अधिकरण ..... एक आनुकल्पिक संस्थागत तंत्र या प्राधिकरण हैं जो उच्च न्यायालय से कम प्रभावी होने के लिए प्रकल्पित नहीं हैं, जो संशोधित सांविधानिक स्कीम के सदृश हो किंतु साथ ही, सांविधानिक न्यायालयों की न्यायिक

---

[59] ए. आई. आर. 1980 एस.सी. 2056.

[60] (2010) 6 एस. सी. आर. 347

पुनर्विलोकन अधिकारिता को न नकारे ।

54. उच्च न्यायालय की अधिकारिता का प्रयोग करने वाले अधिकरण में कोई अभिशाप नहीं है और इस भावना से वे उच्च न्यायालय के अनुपूरक या अतिरिक्त होंगे किंतु साथ ही हमारा यह कर्तव्य होगा कि 'हम यह सुनिश्चित करें कि अधिकरण भी जनता के मन में वहीं विश्वास और आस्था पैदा करे । यह तभी हो सकता है जब विधिक पृ-ठभूमि और न्यायिक प्रवृत्ति तथा वस्तुनि-ठता वाले योग्य अभ्यर्थियों को नियुक्त किया जाए ।''

छ. रा-ट्रीय हरित अधिकरण

3.25 **एम. सी. मेहता** बनाम **भारत संघ**[61] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि चूंकि पर्यावरण के मामलों में वैज्ञानिक आंकड़ों का आकलन करना पड़ता है इसलिए ऐसे न्यायनिर्णयन के लिए अपेक्षित विशे-ाज्ञता की दृ-टि से एक न्यायाधीश और दो विशे-ाज्ञों के साथ प्रादेशिक स्तर पर समर्पित पर्यावरण न्यायालय स्थापित करना वांछनीय है । पर्यावरण न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध उच्चतम नयायालय में अपील होनी चाहिए । उन निर्णयों में उन कठिनाइयों को उजागर किया गया था जो पर्यावरण मामलों का निपटारा करते समय न्यायाधीश के सामने आती थीं । उसमें आगे मत व्यक्त किया गया था कि पर्यावरण मामलों के शीघ्र निपटारे के लिए पर्यावरण न्यायालय स्थापित किए जाने चाहिए ।

3.26 **इंडियन कौंसिल फार एनवायरनमेंटल लीगल एक्शन** बनाम **भारत संघ**[62] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने निदेश दिया था कि पर्यावरण मुद्दों पर शीघ्र कार्यवाही करने के लिए ऐसे पर्यावरण न्यायालय स्थापित किए जाएं जिनके पास सिविल और दांडिक अधिकारिता हो ।

3.27 **ए. पी. पल्युशन कंट्रोल बोर्ड** बनाम **एम. वी. नायडु**[63] वाले मामले में, न्यायालय ने ऐसे पर्यावरण न्यायालय बनाने की आवश्यकता को निर्देशित किया था जिन्हें पर्यावरण वैज्ञानिकों/तकनीकी दृ-टि से अर्हित व्यक्तियों की विशे-ाज्ञ सलाह का फायदा मिलेगा । वह विभिन्न देशों के विधिवेत्ताओं के विचारों के विस्तृत विवेचन के पश्चात् न्यायिक प्रक्रिया के अंग स्वरूप होंगे।

3.28 **एल. पी. पल्युशन कंट्रोल बोर्ड** बनाम **एम. वी. नायडु**[64] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने पूर्ण और प्रत्यायोजित शक्तियों के अधीन अपील प्राधिकरणों के गठन के प्रति निर्देश किया था । जल (प्रदू-ाण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 के अधीन गठित अपील प्राधिकरणों के बारे में न्यायालयने टिप्पणी की कि एक राज्य को छोड़कर जहां अपील प्राधिकरण में एक सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय न्यायाधीश पीठासीन थे, दूसरे राज्यों में केवल दफ्तर शाह आसीन थे । इन अपील प्राधिकरणों में न्यायिक या पर्यावरण विशे-ाज्ञ पीठासीन नहीं थे । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विधि आयोग इन न्यायिककल्प निकायों के गठन में वि-ामताओं की जांच पड़ताल कर संरचना में एकरूपता लाने के लिए एक नई स्कीम का सुझाव दे सकता है ताकि प्रशासनिक या लोक प्राधिकरणों द्वारा पारित आदेशों का प्रभावी पर्यवेक्षण हो सके । इनके अंतर्गत सरकार के आदेश भी आते हैं ।

---

[61] 1986(2) एस. सी. सी. 176. .

[62] 1962(3) एस. सी. सी. 212.

[63] 1999(2) एस.सी.सी. 718.

[64] 2001(2) एस.सी.सी. 62.

3.29 परिणामस्वरूप रा-ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम, 1995 और रा-ट्रीय पर्यावरण (अपील) प्राधिकरण अधिनियम, 1997 अधिनियमित किए गए । किंतु वे अपर्याप्त पाए गए और यह मांग उठी कि पर्यावरण मामलों में कार्यवाही और अधिक दक्षतापूर्ण तरीके से तथा प्रभावकारी ढंग से की जाए । विधि आयोग ने अपनी 186वीं रिपोर्ट में बहुमुखी न्यायालयों का सुझाव दिया जिनमें न्यायिक और तकनीकी विशे-ाज्ञ काम करें । आयोग नेआस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में पर्यावरण न्यायालयों के बारे में निर्देश किया । परिणामस्वरूप रा-ट्रीय हरित अधिकरण बनाया गया जो एक विशे-ा त्वरित न्यायमंच, न्यायिककल्प निकाय के रूप में काम करे जिसमें मामलों के शीघ्र निपटारे सुनिश्चित करने के लिए न्यायाधीश और पर्यावरण विशे-ाज्ञ आसीन हों ।

3.30 **टैकी टेगी तारा** बनाम **राजेन्द्र सिंह भंडारी**[65] वाले मामले में, राज्य प्रदू-ाण नियंत्रण बोर्ड के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति के समुचित नियम बनाने की कार्यपालिका की शक्ति से संबंधित मुद्दे पर विचार करते हुए उच्चतम न्यायालय ने **पंजाब राज्य** बनाम **सलिल सबलोक**[66] में अपनी पूर्व निर्णय का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि राज्य प्रदू-ाण निवारण और नियंत्रण बोर्डों के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति के वि-ाय में नियम बनाना रा-ट्रीय हरित अधिकरण की क्षमता से परे है । न्यायालय ने राज्यों को निदेश दिया कि राज्य प्रदू-ाण निवारण और नियंत्रण बोर्डों की संस्थागत आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए तथा उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि को भी ध्यान में रखते हुएसमुचित दिशानिर्देश या भर्ती नियम बनाए जाए ।

ज. चोकसी समिति - 1977

3.31 प्रत्यक्ष कर विधि के सरलीकरण और युक्तिकरण के प्रयोजनार्थ विधिक और प्रशासनिक अध्युपायों की पड़ताल और सुझाव देने के लिए एक समिति स्थापित की गई । समिति ने एक पृथक कानून के अधीन अखिल भारतीय अधिकारिता से युक्त एक केंद्रीय कर न्यायालय की स्थापना की सिफारिश की । समिति की सिफारिशों के आधार पर संविधान के संशोधन की आवश्यकता उत्पन्न हुई । समिति का सुझाव था कि उच्च न्यायालयों में विशे-ाकर न्यायपीठों का गठन करना वांछनीय है जिनमें वि-ाय का विशे-ा ज्ञान रखने वाले न्यायाधीश आसीन हों जो पूरे व-र्ा निरंतर पीठासीन होकर लंबित हजारों कर मामलों में कार्यवाही करें ।

झ. राघवन समिति रिपोर्ट - 2002

3.32 प्रतिस्पर्धा नीति वि-ायक उच्च स्तरीय समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करके एक नई विधि बनाने और भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग स्थापित करने की सिफारिश की । वह आयोग अपने न्यायनिर्णयन प्रयास में विनिर्दि-ट प्रतिस्पर्धा विरोधी परिपाटियों के बारे में प्रभावी ढंग से कार्यवाही करे तथा उसे उल्लंघनकर्ताओं को निवारक दंड देने की शक्ति प्राप्त हो । सिफारिश की गई कि न्यायिक स्वाधीनता की आवश्यकता का सम्मान करने के लिए अन्वे-ाण, अभियोजन और न्यायनिर्णयन के कार्यों को पृथक-पृथक रखा जाए ।[67] परिणामस्वरूप प्रतिस्पर्धा अधिनियम 2002 अधिनियमित किया गया ।

---

[65] 22 सितंबर, 2017 को विनिश्चित 2017 की सिविल अपील सं. 1359.

[66] (2013) 5 एस.सी.सी. 1.

[67] अनु-ाा रमेश, ''ट्रिब्युनलाइजेशन आफ इंडियाज़ कम्पीटीटिव रजीम'' 9 एन.यु.जे.एस.एल.आर. 272-273 (2016).

ञ. वित्त अधिनियम, 2017

3.33 वित्त अधिनियम, 2017 द्वारा आठ अधिकरणों का विलय समरूपता के आधार पर किया गया और सरकार को उसके सदस्यों को नियुक्त करने तथा हटाने की शक्ति दी गई । जिन अधिकरणों का विलय किया गया है वे तालिका के रूप में सूचीबद्ध है जो उपाबंध-1 है ।

3.34 वित्त अधिनियम, 2017 की धारा 184 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए केंद्रीय सरकार ने 'अधिकरण, अपील अधिकरण और अन्य प्राधिकरण (अर्हताएं, अनुभव और सदस्यों की अन्य सेवाशर्तें) नियम 2017 विरचित किए हैं । ये नियम, सभापति, उपसभापति, चेयरपर्सन, उप चेयर पर्सन, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, पीठासीन अधिकारी, लेखापाल सदस्य, प्रशासनिक अधिकारी, न्यायिक सदस्य, विशे-ाज्ञ सदस्य, विधि सदस्य, राजस्व सदस्य, तकनीकी सदस्य, अधिकरण के सदस्य, अपील सदस्य अथवा यथास्थिति, वित्त अधिनियम, 2017 की आठवीं अनुसूची के स्तंभ (2) में विनिर्दि-ट प्राधिकरण को लागू होते हैं, अपने संबंधित अधिनियमों के अधीन गठित 19 अधिकरण/अपील अधिकरण/ प्राधिकरण आठवीं अनुसूची के स्तंभ (3) में वर्णित हैं । वित्त अधिनियम और नियमों की सांविधानिक विधिमान्यता को रिट याचिका के माध्यम से चुनौती दी गई है जो उच्चतम न्यायालय के समक्ष लंबित है ।[68]

3.35 अधिकरणों की स्थापना प्रायः सभी देशों में इस कारण की गई है कि वे विशे-ाज्ञों के पीठासीन होने की वजह से अधिक सस्ते (खर्च प्रभावी), सुगम्य, बारीकियों से मुक्त, त्वरित होते हैं तथा अधिक शीघ्रता एवं दक्षता से कार्यवाही करते हैं, जबकि न्यायालय अधिक दुर्गम, अधिक विधिपरक और अधिक खर्चीले होते हैं । अधिकरण बनाने की संकल्पना को न्याय-प्रशासन में विलंब और बकाया मामलों के संकट को दूर करने के लिए विकसित किया गया था । फिर भी कुछ अधिकरणों के कामकाज की बाबत शासकीय तौर पर उपलब्ध आंकड़ों से संतो-ाजनक तस्वीर सामने नहीं आती। यद्यपि हर व-र् दाखिल मामलों की तुलना में अधिकरणों की निपटारा दर उल्लेखनीय रही है अर्थात् 94% रही है जबकि लंबित मामले बहुत ज्यादा हैं । अधिकरणों के समक्ष लंबित मामलों के कुछ आंकड़े नीचे दिए गए हैं :–

	तालिका	तारीख	लंबित मामलों की संख्या
1.	केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण	जुलाई, 2017 में	44,333
2.	रेल दावा अधिकरण	30.09.2016 को	45,604

[68] **जयराम रमेश** बनाम **भारत संघ,** 2017 की रिट याचिका सं. 558 में यह अभिकथन किया गया था कि अधिकरण, अपील अधिकरण और अन्य प्राधिकरण (अर्हताएं, अनुभव और सदस्यों की अन्य सेवा शर्तें) नियम 2017 को रा-ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 के शक्तिवाक्य घोि-त किया जाए क्योंकि यह अत्यधिक प्रत्यायोजन के दो-ा से दूि-त है । वित्त विधि और न्याय, पर्यावरण, संसदीय कार्य मामलों को मंत्रिमंडल सचिवालय और रा-ट्रीय हरित अधिकरण (एन.जी.टी.) को नोटिस जारी किए जा चुके हैं ।

केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण (प्रधान न्यायपीठ) अधिवक्ता संघ, अध्यक्ष के माध्यम से बनाम भारत संघ, रिट याचिका (सिविल) 2017 की सं. 640 ; अखिल भारतीय वकील संघ बनाम भारत संघ रिट याचिका (सिविल) सं. 778/2017 ; तथा सोशल एक्शन फार फोरेस्ट एंड एनवायरनमेंट बनाम भारत संघ, रिट याचिका (सिविल) सं. 561/2017 को भी देखिए -

3.	ऋण वसूली अधिकरण	03.07.2016 को	78,118
4.	सीमाशुल्क, उत्पाद शुल्क और सेवा कर अपील अधिकरण	2016 के अंत में	90,592
5.	आयकर अपील अधिकरण	2016 के अंत में	91,538

अध्याय 4

पूर्व विधि आयोगों की सिफारिशों का पुनरावलोकन

4.1 नि-पक्ष और त्वरित विचारण का अधिकार जीवन के अधिकार और वैयक्तिक स्वतंत्रता का ही एक अंग है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन एक मूल अधिकार है । अतः मामलों के त्वरित निपटारे में किसी भी प्रकार के विलंब से उसका अतिलंघन होता है । भारतीय विधि आयोग ने 14वीं रिपोर्ट में (1958) न्याय देने के तंत्र में विलंब पर अपनी चिंता जताई है और न्याय देने के तंत्र के प्रशासन में सुधार की सिफारिशें की हैं जिन्हें विलंब को कम करने तथा न्याय तक पहुंच का विस्तार करने की दृ-टि से न्यायिक प्रणाली को सुदृढ़ बनाने के लिए समय-समय पर कार्यान्वित किया गया है ।[69]

क. भारत के विधि आयोग की 14वीं रिपोर्ट, 1958

4.2 मामलों के निपटारे में देरी उतनी ही पुरानी है जितनी स्वयं विधि/असाधारण विलंब से मुकदमे का खर्च बढ़ जाता है और उससे अन्याय होता है । किंतु साथ ही, शीघ्र न्याय से जल्दबाजी या संक्षिप्त न्याय अभिप्रेत नहीं है । वह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि संविवादग्रस्त तथ्यों का अवधारण हो और तत्पश्चात् अवधारित तथ्यों में विधि के सिद्धांत लागू हों ।

4.3 विधि आयोग के समक्ष एक बड़ा प्रश्न यह था कि क्या विनिर्दि-ट वि-नयों/मुद्दों के लिए अधिकरण बनाने की सिफारिश की जाए या नहीं । आयोग ने इस नि-क-र्ा पर पहुंचने से पहले कि फ्रांस में काडंसील द इटेट जैसा साधारण प्रशासनिक निकाय बनाना भारत में व्यावहारिक नहीं है, इंग्लैंड, फ्रांस और अमेरिका में तुलनात्मक अनुभवों की पड़ताल की ।[70]

4.4 आयोग ने सिफारिश की कि केंद्र में और राज्यों में अपील अधिकरण स्थापित किए जाएं जिनकी अध्यक्षता विधितः अर्हित अध्यक्ष करे तथा उनमें अनुभवी सिविल सेवक सदस्य के रूप में काम करें । उनमें सरकारी सेवकों के ज्ञापन और अपीलें उनके विरुद्ध की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही के संबंध में निर्देशित की जा सकती हैं । प्रत्याशा थी कि ऐसे अधिकरण की स्थापना से दो प्रयोजन सिद्ध होंगे - एक त्वरित न्याय और दूसरा सस्ता न्याय/इसके अलावा, अधिकरण द्वारा पारित सकारण आदेश से न्यायालयों को छोटी-छोटी याचिकाओं को संक्षिप्त रूप से नामंजूर करने में सहायता मिलने वाली है । आयोग उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की वर्तमान अधिकारिता में जो उन्हें न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करने की शक्ति देती है, कोई कटौती करने के लिए सहमत नहीं था।

ख. भारत के विधि आयोग की 58वीं रिपोर्ट, 1974

4.5 आयोग ने '**उच्च न्यायपालिका की संरचना और अधिकारिता**' पर अपनी 58वीं रिपोर्ट में यह मत व्यक्त किया था --

---

[69] एन.एन.माथुर, चेन्जेज रिक्वायर्ड इन वर्किंग एंड प्रोसिजरल लॉज़ फार स्पीडी प्रोसेसिंह, 32 आई.वी.आर. 337-344 (2005).

[70] पूर्वोक्त नोट 49, पृ. 415.

''सेवा संबंधी मामलों के बारे में आग्रह यह है कि एक पृथक उच्च शक्ति प्राप्त अधिकरण या आयोग सेवा मामलों में कार्यवाही करने के लिए स्थापित किया जाना चाहिए और इस आयोग की अध्यक्षता उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के स्तर का कोई न्यायाधीश करे । उनके साथ दो स्वतंत्र विशे-ाज्ञ काम करें, तथा इस अधिकरण या आयोग के विनिश्चय अंतिम हों, किंतु लोक सेवक को यह अधिकार हो कि वह इस आधार पर अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय में जा सके कि मूल अधिकारों का उल्लंघन हुआ है । इस अधिकरण या आयोग के सदस्यों की सेवा शर्तें वैसी हों जैसी उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की होती हैं ।

.....किंतु यदि उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय की पर्यवेक्षण अधिकारिता यथावत रहे और सेवा न्यायालय के विनिश्चय इन उच्चतर न्यायालयों के पुनर्विलोकन के अध्यधीन हों तो हमें नहीं लगता कि सेवा न्यायालयों के सृजन से इन न्यायालयों में बढ़ते मामलों का बोझ कैसे कम हो पाएगा ।

हमारी राय में, वर्तमान विधिक और सांविधिक स्थिति पर्याप्त संरक्षण प्रदान करती है । अतः हम पृथक सेवा अधिकरण बनाने की सिफारिश नहीं करते हैं ।

4.6 आयोग ने तीव्रता से और सस्ती दर पर पक्षकारों के सौहार्दपूर्ण समझौते कराने के लिए आनुकल्पिक विवाद निवारण तंत्र की सिफारिश की ।

ग. भारत के विधि आयोग की 79वीं रिपोर्ट, 1979

4.7 आयोग ने 'उच्च न्यायालयों और अन्य अपील न्यायालयों में विलंब तथा बकाया मामलों' पर अपनी 79वीं रिपोर्ट में उच्च न्यायालयों में बकाया मामलों पर चिंता व्यक्त की । शीघ्र न्याय की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए यह मत व्यक्त किया गया था --

'1.5 शीघ्र न्याय एक संगठित समाज का सारतत्व है और यह राज्य तथा नागरिकों दोनों के हित में है कि निर्णय के लिए न्यायालय जाने वाले विवादों का फैसला यथाशीघ्र हो । अधिकतर मामलों में न्याय में देरी न्याय से इनकारी होती है । साथ ही, यह प्रकट है कि मामलों के निर्णय में तेजी लाने की दृ-टि से उन आधारभूत सिद्धांतों का त्याग नहीं करना चाहिए जो न्याय सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं । जिस व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को न्यायालयों में विलंब को समाप्त करने और बकाया मामलों का शीघ्र निपटारा करने के अध्युपाय खोजने का कार्य सोंपा गया है, यह उनके सामने आने वाली बहुत बड़ी समस्या है ।

1.5क. मामलों के देर से निपटाने से पक्षकारों को तो कठिनाई होती है किंतु इसका एक मानवीय पहलु भी है और इसका परिणाम यह होता है कि आने वाली पीढ़ियां अपने पूर्वजों द्वारा चलाए गए मुकदमों में बराबर क-ट भोगती रहती हैं .....।

1.14. 1974 में, जब विधि आयोग ने उच्च न्यायपालिका की संरचना और अधिकारिता की समीक्षा की तो उसने उच्चतर न्यायालयों में बकाया मामलों का बोझ कम करने की अपरिहार्य जरूरत पर विशे-ा ध्यान दिया था और अनेक प्रश्नों पर विचार किया था । उन प्रश्नों में रिट याचिकाएं, कराधान, औद्योगिक विवाद तथा न्यायाधीशों की सेवा-शर्तों वि-ायक मामले भी शामिल थे । रिपोर्ट में, विशे-ा इजाजत लेकर की गई अपीलों समेत उच्चतम न्यायालय में

की जाने वाली सिविल और दांडिक दोनों प्रकार की अपीलों पर सविस्तार विचार किया गया था ।'

घ. भारत के विधि आयोग की 115वीं रिपोर्ट-1986

4.8 आयोग ने कर मुकदमों में व्यस्त अधिकरणों और न्यायालयों के नीचे से लेकर उच्च पदानुक्रम तक की जांच पड़ताल की और कर मामलों में उच्च न्यायालयों की अधिकारिता को समाप्त करने के लिए केंद्रीय कर न्यायालय स्थापित करने की सिफारिश की । प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के लिए एक केंद्रीय कर न्यायालय की स्थापना की व्यावहारिकता को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया गया था :–

'1.5 प्रधानतः न्याय प्रशासन का उद्देश्य समाज में उत्पन्न होने वाले विवादों के समाधान के लिए तंत्र की व्यवस्था करना है । विभिन्न प्रकार के विवादों के लिए भिनन-भिन्न मंच स्थापित किए गए हैं, उदाहरणार्थ सिविल न्यायालय, दंड न्यायालय, श्रम न्यायालय, कर अधिकरण आदि । विनिर्दि-ट विवादों से निपटने के लिए विशे-ा रूप से बनाए गए विनिर्दि-ट मंच उन व्यक्तियों की जरूरतों को पूरा करते हैं जो विनिर्दि-ट प्रकार के विवादों का समाधान चाहते हैं ।

2.36 केंद्रीय कर न्यायालय स्थापित किए जाने पर किसी भी उच्च न्यायालय में लंबित वर्तमान सभी निर्देश केंद्रीय कर न्यायालय में अंतरित हो जाएंगे ।

2.39 केंद्रीय कर न्यायालय की स्थापना से उच्च न्यायालय में बकाया मामलों पर गहरी चोट लगेगी तथा अन्य लंबित कार्यवाहियां तेजी से अग्रसर होने लगेंगी ।'

ङ. भारत के विधि आयोग की 124वीं रिपोर्ट - 1988

4.9 'उच्च न्यायालय बकाया मामले - एक अभिनव दृ-टि' नामक अपनी रिपोर्ट में आयोग ने विभिन्न सिफारिशें कीं और यह मत व्यक्त किया --

''यहां मामलों के दाखिल होने को नियंत्रित करने के लिए उच्च न्यायालय की अधिकारिता में कटौती करने की दृ-टि से उच्च न्यायालय के अनुकल्प के रूप में विशे-ाज्ञ अधिकरणों के गठन का पहली बार प्रश्न पैदा हुआ है । इनसे बकाया मामलों की समस्या से निपटने में अप्रत्यक्ष रूपसे मदद मिलेगी ।

.....विधि आयोग की पक्की राय है कि जहां तक संभव हो, न्याय की गुणवत्ता को नुकसान पहुंचाए बिना, विशाल अपीली और व्यापक आरंभिक अधिकारिता नियंत्रित करनी या काटी जानी चाहिए ।

.....सारांश में, ... आयोग का दृ-टिकोण है कि उच्च न्यायालय की अधिकारिता को समानांतर रूप से समाप्त करते हुए विशे-ाज्ञ न्यायालय/अधिकरण स्थापित करने के लिए अपीलों की संख्या घटाई जाए । इससे वर्तमान विधि आयोग की रिपोर्टों को कार्यान्वित करके कार्यरूप में परिणत करने पर, सरसरी तौर पर आकलन करने पर वर्तमान मामले दाखिल होने की संख्या में लगभग 45% मामले उच्च न्यायालय में कम आएंगे ।'

4.10 विशे-ीकृत न्यायालय/अधिकरण स्थापित करने की अपनी सिफारिशों के समर्थन में

आयोग ने आस्ट्रेलिया में प्रचलित स्थिति का हवाला दिया और यह मत व्यक्त किया --

''स्थापित न्यायालयों से इतर अधिकरण बनाए गए हैं - प्रशासनिक अपील अधिकरण, माध्यस्थम अधिकरण, कर्मकार प्रतिकर अधिकरण, पेंशन अधिकरण, योजना अपील अधिकरण, समान अवसर अधिकरण, आदि । अधिकरण बनाने का यह क्रियाकलाप इस विश्वास पर आधारित है कि स्थापित न्यायालय अत्यधिक दुर्लभ हैं, अत्यधिक विधिपरक हैं, अत्यधिक खर्चीले हैं और इन सबसे ऊपर अत्यधिक धीमे हैं ।'

च. भारत के विधि आयोग की 162वीं रिपोर्ट, 1998

4.11 केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, सीमाशुल्क, उत्पाद शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण तथा आयकर (अपील) अधिकरण शी-र्क की अपनी रिपोर्ट में आयोग ने रा-ट्रीय अपील प्रशासनिक अधिकरण के गठन के लिए आनुकल्पिक सिफारिश की और यह मत व्यक्त किया --

''उच्चतम न्यायालय ने एल. चंद्र कुमार वाले मामले में (पूर्वोक्त) अभिनिर्धारित किया था कि व्यथित पक्षकार केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के फैसले के विरुद्ध अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता का सहारा ले सकता है । विधि के इस विकासक्रम की प्रतिक्रिया को पहले ही महसूस किया जा चुका है । कर्नाटक सरकार कर्नाटक राज्य प्रशासनिक अधिकरण को समाप्त करने की इच्छा प्रकट कर चुकी है । हाल के दिनों में समाचारों में यह देखा गया है कि केंद्रीय सरकार भी केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण को समाप्त करने का प्रस्ताव कर रही है । प्रशासनिक अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध उपबंधित उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन का उपचार तथा अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय में आगे अपील करना केवल समय ज्यादा नहीं लगता बल्कि महंगा भी है । इसके अलावा, विभिन्न उच्च न्यायालय कर्मचारियों की सेवा शर्तों वि-नयक किन्हीं कानूनी उपबंधों का निर्वचन भिन्न-भिन्न प्रकार से कर सकते हैं । इस प्रकार उच्च न्यायालयों के विनिश्चयों में एकरूपता की कमी और परिणामस्वरूप केट न्यायपीठों में एकरूपता की कमी कक्षीकार के मन में दुविधा उत्पन्न कर सकती है । साथ ही न्यायपालिका के माध्यम से न्याय पाने में जनता की आस्था डगमगा जाएगी तथा इस प्रकार लोकतांत्रिक सिद्धांतों से भरोसा उठ जाएगा ।

..... विधि के और तथ्य के सारवान प्रश्न पर अपील केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध प्रस्तावित अपील मंच में की जा सकती है ।

..... कक्षीकार के मुकदमे का खर्च कम करने के लिए पूरे देश में प्रस्तावित मंच की शाखाएं बन सकेगी ।

.....प्रस्तावित अपील न्यायालय का विनिश्चय कैट की सभी शाखाओं पर आबद्धकर होगा । प्रस्तावित न्यायमंच उच्च न्यायालय से ऊंची प्रास्थिति का होगा किंतु उच्चतम न्यायालय से नीचे होगा ।

..... आज इस बात की आवश्यकता है कि मामलों के त्वरित निपटारे के लिए वे सभी मामले, जिनमें विधि के एक या अधिक सामान्य प्रश्न उठते हैं और जिसके आधार पर मामलों का निपटारा एक ही निर्णय द्वारा किया जा सकेगा, एकजुट किए जाने चाहिए और सुने जाने चाहिए । इस प्रकार उच्च न्यायालयों और अन्य अपील न्यायालयों में विलंब तथा बकाया

मामलों पर विधि आयोग की 79वीं रिपोर्ट में इस सिफारिश की गूंज सुनाई पड़ती है ....'

4.12 एल. चन्द्र कुमार के बाद प्रशासनिक अधिकरण की स्थिति के बारे में आयोग ने मत व्यक्त किया --

'अब यह उच्च न्यायालय का आनुकल्पिक तंत्र नहीं रहा है अपितु एक अधिकरण है जिसके विनिश्चय की उच्चतम न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा संवीक्षा की जा सकती है ।

..... उच्चतम न्यायालय ने भी यह अभिनिर्धारित किया है कि हालांकि ये अधिकरण उच्च न्यायालयों की रिट अधिकारिता के अध्यधीन हैं फिर भी ये कानूनी उपबंधों और नियमों की सांविधानिक विधिमान्यता से संबंधित प्रश्नों का विनिश्चय करने के लिए सक्षम हैं । निःसंदेह प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के उपबंध इसके अपवाद हैं जिनके अधीन वे बनाए गए हैं । उच्चतम न्यायालय भी यह नामंजूर कर चुका है कि इन अधिकरणों में तकनीकी/प्रशासनिक सदस्य नहीं होने चाहिए । उनका कहना था कि ये न्यायिकेतर सदस्य ऐसा ज्ञान देते हैं जो हो सकता है न्यायिक सदस्यों के पास न हो । उच्चतम न्यायालय की उपरोक्त उक्ति के प्रकाश में भारत के विधि आयोग के लिए ज्यादा गुंजाईश नहीं बची कि वह इन अधिकरणों के कार्यकरण के संबंध में कोई सारवान अध्युपाय या सिफारिशें सुझाए ।'

छ. भारत के विधि आयोग की 186वीं रिपोर्ट - 2003

4.13 पर्यावरण न्यायालय बनाने के प्रस्ताव पर आयोग ने सिफारिश की कि उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय पर दबाव तथा बोझ घटाने के लिए पर्यावरण न्यायालय स्थापित किए जाएं । फिर भी यह सिफारिश की गई कि जल (प्रदू-ाण निवारण और नियंत्रण, अधिनियम, 1974, वायु (प्रदू-ाण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981 तथा पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अधीन जिनमें यह समर्थकारी उपबंध है कि केंद्रीय सरकार अन्य पर्यावरण संबद्ध अधिनियमों के अधीन भी अपील न्यायालय के रूप में इन न्यायालयों को अधिसूचित करसकेगी, इन न्यायालयों को संबंधित प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध अपीली शक्तियां होंगी । आयोग ने यह भी राय व्यक्त की कि 1972 के स्टाकहोम सम्मेलन तथा 1992 के रियो सम्मेलन में लिए गए फैसलों को प्रभावी रूप देने के लिए अनुसूची VII की सूची 1 की प्रविन्टि 13क के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 253 के अधीन ऐसी विधि बनाई जा सकती है ।

4.14 आगे सिफारिश की गई कि समस्त पर्यावरण मुद्दों पर आरंभिक अधिकारिता का न्यायालय तथा तीनों अधिनियमों अर्थात् जल अधिनियम, वायु अधिनियम और पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1906 के अधीन अपील प्राधिकारण होगा तथा इससे उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय का बोझ हल्का हो जाएगा । प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध सीधे उच्चतम न्यायालय में कानूनी अपील की जाएगी । अपील के प्रश्न पर यह सिफारिश की गई कि--

''जैसाकि पहले कहा जा चुका है, अब यह प्रस्तावित है कि हर राज्य में एक पर्यावरण न्यायालय होगा तथा उसे अपीली अधिकारिता होगी । उसे अपीली अधिकारिता होगी जिसका प्रयोग अब विशे-ा अधिनियमों के अधीन सरकार के अधिकारियों द्वारा किया जाता है । जल प्रदू-ाण नियंत्रण और निवारण अधिनियम, 1974, वायु प्रदू-ाण नियंत्रण और निवारण अधिनियम, 1981 के अधीन तथा पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अधीन बनाए गए नियमों के

अधीन लंबित अपीलें हरेक राज्य में प्रस्तावित पर्यावरण न्यायालय को अंतरित की जाएंगी तथा सभी भावी अपीलें उक्त न्यायालय में फाइल की जानी चाहिए ।'

ज. भारत के विधि आयोग की 215वीं रिपोर्ट, 2008

4.15 'एल. चन्द्र कुमार बी. रिविजिटेड बाई लार्जर बैंच आफ सुप्रीम कोर्ट' नामक रिपोर्ट में आयोग द्वारा यह मत व्यक्त किया गया था कि प्रशासनिक अधिकरण मूल्यवान हैं और वे लोकतांत्रिक राज्य की न्यायनिर्णयन प्रणाली के अनिवार्य अंग हैं । अधिकरण अस्तित्व में आ गए हैं । विशे-न अधिकरण अस्तित्वहीन होने के बजाए प्रगति करने संभाव्य हैं । यह धारणा कि 1985 के अधिनियम के अधीन गठित अधिकरण सरकार पर निर्भर हैं, भ्रामक धारणा पर आधारित है । अधिकरण के कामकाज को सरकार किसी भी तरीके से नियंत्रित नहीं करती । इस संबंध में यह मत व्यक्त किया गया था कि --

''7.8 उच्च न्यायालय राज्य न्यायिक व्यवस्था के शिखर पर हैं । जब तक कि मूल स्तर, जहां मुकदमा शुरू किया जाता है तथा अपील या पुनरीक्षण के माध्यम से उच्च न्यायालय तक चलता है, की पुनर्रचना की जाती है और यह प्रचुरमात्रा में अपीली अधिकारिता या तो नियंत्रित होती है या उसकी कटौती की जाती है, तो तब तक उच्च न्यायालय में मामले फाइल किया जाना न तो विनियमित होगा और न ही समाप्त होगा । विधि आयोग ने मत व्यक्त किया कि जहां तक संभव हो वहां तक प्रचुर मात्रा में अपीली और व्यापक आरंभिक अधिकारिता न्याय की गुणता को क्षीण किए बिना, नियंत्रित या कम की जानी चाहिए । आयोग का दृ-टिकोण अपीलों की संख्या घटाना, विशे-ज्ञ न्यायालय/अधिकरण स्थापित करना, साथ ही साथ उच्च न्यायालय की अधिकारिता समाप्त करना है ।

8.1 ..... बहराल, इस आशंका का निवारण करना कि अधिकरणों को कुछ मामलों में सरकार द्वारा नियंत्रित किया जा सकेगा, अधिकरण के अध्यक्ष को उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के समतुल्य शक्तियां दी जा सकती हैं । उस संबंध में संविधान के अनुच्छेद 229 के समरूप 1985 के अधिनियम में एक उपबंध हो कि अधिकरण के कर्मचारियों की सेवाशर्तें अधिकथित करने के संबंध में, शक्तियां अध्यक्ष में निहित की जा सकती हैं । उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की भांति अधिकरण के अध्यक्ष में, वित्तीय मामलों में, अधिक स्वाधीनता निहित की जा सकती है । अधिकरण का केंद्रक मंत्रालय, कार्मिक लोक व्यथा और पेंशन मंत्रालय के बजाय विधि और न्याय मंत्रालय हो सकता है ।

8.2 यदि यह धारणा हो कि मामले के उच्चतम न्यायालय पहुंचने से पहले अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध कम से कम एक अपील का उपबंध हो, वह अपील अधिकरण के भीतर ही, जैसे प्रत्येक उच्च न्यायालय में लैटर्स पेटेंट अपील या रिट अपील होती है, स्वयं 1985 के अधिनियम के अधीन उपबंधित की जा सकती है ।'

4.16 आयोग ने इस बात को ध्यान में रखा कि प्रशासनिक अधिकरण सेवा के मामलों के संबंध में उच्च न्यायालयों के प्रभावी एवं वास्तविक प्रतिस्थानी के रूप में गठित किए गए हैं । इसके अतिरिक्त, **उच्च न्यायालयों की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति उच्चतम न्यायालय की शक्ति की भांति अलंघ्य नहीं कही जा सकती ।** प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना के पीछे जो उद्देश्य था वह विफल हो जाएगा यदि उनके द्वारा न्यायनिर्णीत सब मामले संबंधित उच्च न्यायालयों में जाने होंगे।

4.17 पूर्वोक्त मताभिव्यक्ति कि 'उच्च न्यायालय की न्यायिक शक्ति वैसी अलंघ्य नहीं है जैसी उच्चतम न्यायालय की शक्ति है, कोई आधार या स्प-टीकरण दिए बिना लेखबद्ध की गई है और एल. चन्द्र कुमार (उक्त) वाले मामले में सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा अधिकथित विधि के प्रतिकूल जाती है । इस संबंध में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के पश्चात् आयोग के लिए ऐसा मत व्यक्त करने का विशे-ाकर जब ऐसी कोई राय विधानमंडल समेत किसी न्यायालय या प्राधिकरण द्वारा कभी व्यक्त नहीं की गई है, कोई अवसर नहीं था ।

झ. भारत के विधि आयोग की 232वीं रिपोर्ट, 2009

4.18 **'अधिकरणों के अध्यक्षों और सदस्यों की सेवानिवृत्ति की आयु - एकरूपता की आवश्यकता'** शी-र्क अपनी रिपोर्ट में आयोग ने सिफारिश की कि अध्यक्षों की सेवानिवृत्ति की आयु सभी अधिकरणों के लिए एकरूप 70 व-र् नियत की जानी चाहिए । इसी प्रकार सब अधिकरणों के सदस्यों की सेवानिवृत्ति की आयु 65 व-र् एकरूपता से नियत की जानी चाहिए । उसने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :

> ''1.2 यह उल्लेख करने की जरूरत नहीं है कि प्रशासनिक और न्यायिक सेवाओं के ऊंचे स्तर पर सेवानिवृत्ति की अधिक आयु विहित है क्योंकि उनमें काम करने वालों को प्राप्त वृत्तिक अनुभव समाज की भलाई के लिए पूर्णतः इस्तेमाल किया जाना जरूरी है । यह उल्लेखनीय है कि सरकार विशे-ाकर ऊंचे स्तर पर कर्मचारियों के अभिनवीकरण - प्रशिक्षण पर बहुत सारा धन खर्च करती है अतः सरकार के कार्य चलाने में उनके समृद्ध, वृत्तिक अनुभव का इस्तेमाल आम आदमी की भलाई के लिए किया जा सकता है ।.....
>
> 1.8 अधिकरणों में चयन और नियुक्ति के लिए एक नियत प्रक्रिया विहित है । उसमें चयन के लिए आवेदन आमंत्रित करने और विभिन्न स्तरों परसरकार से अनुमोदन की प्रक्रिया में 6 मास से लेकर 1 व-र् तक का समय लगता है ।.....'

4.19 उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की सेवानिवृत्ति की आयु के बारे में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया था --

> '1.9 ..... इस संबंध में काफी लंबा वाद-विवाद पहले ही हो चुका है कि क्या उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवानिवृत्ति आयु एक समान इस निश्चित कारण से होनी चाहिए कि उनके कार्य और कर्तव्य एक ही प्रकार के होते हैं और इसीलिए यदि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की सेवानिवृत्ति की आयु 65 व-र् है तो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की भी वही आयु होनी चाहिए । यदि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश या मुख्य न्यायमूर्ति, जो 62 व-र् की आयु में सेवनिवृत्त होते हैं अधिकरण में काम करना चाहें तो जिसे जैसाकि पहले कहा जा चुका है, वे अपनी सेवानिवृत्ति के पश्चात् ग्रहण करते हैं तो अधिकरण में उनका कार्यकाल 2-3 व-र् होगा । प्रकट है कि यदि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश किसी अधिकरण में नियुक्त किए जाते हैं तो उनकी सेवानिवृत्ति आयु कम से कम 70 व-र् होनी चाहिए क्योंकि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में उनकी सेवानिवृत्ति की आयु 65 व-र् है ।.....'

4.20 आयोग ने आगे सिफारिश की कि उच्च न्यायालयों से और उच्चतम न्यायालय से आने

वाले सभापतियों की सेवानिवृत्ति आयु में अंतर नहीं होना चाहिए । वह आयु एकरूपता से 70 वर्ष नियत होनी चाहिए । इसके अलावा, सदस्यों की सेवानिवृत्ति आयु में भी कोई अंतर नहीं होना चाहिए चाहे वे प्रशासनिक क्षेत्र से आए हों या न्यायिक क्षेत्र से ।

अध्याय 5

नियुक्ति, अर्हताओं, कार्यकाल और सेवाशर्तों में एकरूपता

5.1 अधिकरणों की स्थापना न्यायिक तौर पर काम करके न्यायिकल्प कर्तव्यों के निर्वहन के उद्देश्य से की गई है । इस प्रकार वे अन्य प्रशासनिक निकायों से भिन्न हैं । अधिकरण न तो न्यायालय होता है और न ही कार्यपालिक निकाय । अपितु वे न्यायिक रूप से काम करने के लिए बाध्य हैं ।[71] उन्हें विशुद्ध रूप से प्रशासनिक या कार्यपालक कार्यों से भिन्न न्यायिक कार्य दिए जाते हैं । इस प्रकार, इन अधिकरणों के दक्षतापूर्ण और प्रभावकारी ढंग से काम करने के लिए उन व्यक्तियों को सांविधानिक न्यायालयों द्वारा अधिकथित सिद्धांतों के अनुसार नियुक्त किया जाना चाहिए जिन्होंने उच्च न्यायपालिका में सेवा की है ।[72]

5.2 अधिकरण न्यायिककल्प निकाय के रूप में विवेकपूर्ण ढंग से मामलों का विनिश्चय करने के लिए न्यायिक कार्य सम्पन्न करता है । वह विधि द्वारा उन सब तकनीकों, जटिलताओं, बारीकियों, विभेदों और निर्बंधनों का पालन करने के लिए आबद्ध नहीं होता जो विचारण करते समय अभिलेख न्यायालयों पर लागू होते हैं, किंतु साथ ही, अधिकरण से अपेक्षा की जाती है कि वह सब मामलों को सार और शैली की दृ-टि से देखे और यह निश्चय करे कि सुनवाई की जाए और मामले का निपटारा ऋजुता, ईमानदारी और नि-पक्षता के साथ हो ।[73]

क. नियुक्ति तंत्र में एकरूपता

5.3 स्वस्थ लोकतंत्र के स्थिर रहने के लिए स्वतंत्र न्यायपालिका अनिवार्य है । विधिसम्मत शासन तभी विद्यमान रहेगा जब न्यायपालिका कार्यपालिका और विधायिका के दबाव से मुक्त रहे । स्वाधीन न्यायपालिका शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत से उत्पन्न होती है जो स्वस्थ लोकतंत्र का सार है, और संविधान के बुनियादी ढांचे का अभिन्न अंग है ।[74] न्यायपालिका की स्वाधीनता से वह आधारशिला बनती है जिस पर लोकतांत्रिक राजनीति का प्रसाद बनता है । न्यायपालिका सरकार के दूसरे अंगों से पृथक रहती है ताकि न्यायाधीश किसी के भी ऐसे दबाव से मुक्त होकर काम करें कि किसी मामले विशे-ा का विनिश्चय कैसे करना है ।[75] स्वतंत्र, नि-पक्ष और निडर न्यायपालिका हमारी सांविधानिक विचारधारा है ।[76] न्यायपालिका की स्वाधीनता से अभिप्रेत है हस्तक्षेप और दबाव से स्वतंत्रता जिससे न्यायिक वातावरण बनता है जहां वह न्याय के हित में तथा सांविधानिक मूल्यों के प्रति पूर्णतः प्रतिबद्ध होकर काम कर सके ।'' इस प्रकार, सेवाकाल में सुरक्षा हो, साधारण धनीय

---

[71] पूर्वोक्त, नोट 2 पृ. 279.

[72] भारत बैंक लि. दिल्ली बनाम भारत बैंक लि. के कर्मचारी, दिल्ली, ए. आई. आर. 1950 एस. सी. 188.

[73] मैक मोहन उमर टी, ''एफेयर ट्रायल बीफोर क्वासी ज्युडिशियल एजरिक्वार्ड बाई ड्यु प्रोसेस'' 29 एम. एल. आर. 105 (1946).

[74] रजिस्ट्रार, (प्रशा.) उड़ीसा उच्च न्यायालय, बनाम कांता सतपथी, ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 3265, तथा बिहार राज्य बनाम बाल मुकुन्द साह (2000) 4 एस.सी. सी. 640.

[75] एस. पी. गुप्ता बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 149.

[76] भारतसंघ बनाम प्रतिभा बनर्जी, ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 603, भारत संघ बनाम सांकलचंद हिमतयाल सेठ, ए. आई. आर. 1077, एस.सी. 2328 तथा मुंबई उच्च न्यायालय बनाम सिरीश कुमार रंगराव पाटिल, ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 2631.

चिंताओं से मुक्ति हो, अंदर के (न्यायपालिका में दूसरों के) तथा बाहर के (कार्यपालिका के) असर तथा दबाव से स्वतंत्र हो ।[77] इसके आयाम भिन्न हैं जिनके अंतर्गत अन्य सत्ता केंद्रों से आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता तथा उस वर्ग से जिसके वे न्यायाधीश हैं, अर्जित और पल्लवित दुराग्रहों से स्वतंत्रता भी आती हैं । जब एक बार न्यायपालिका में ऐसे लोग आ जाएं जिनकी नि-ठा संदेह से परे हो जो अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन भय या पक्षपात के बिना कर सकें, तो स्वतंत्र न्यायपालिका का उद्देश्य पूरा हो जाएगा ।[78]

5.4 **एस. पी. सम्पत कुमार** बनाम **भारत संघ**[79] वाले मामले में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अधिकरण स्वयं अपने आपमें साध्य नहीं हैं बल्कि साध्य के साधन हैं ; भले ही शीघ्र न्याय, दृ-टिकोण की एकरूपता, विनिश्चयों की सूझबूझ और विशे-ज्ञ न्याय के प्रशसंनीय उद्देश्य प्राप्त किए जाने हैं फिर भी उन्हें प्राप्त करने के लिए स्थापना के लिए आशयित अधिकरणों की संरचना में वह आधारभूत न्यायिक स्वरूप रखे रखना चाहिए ताकि जनता का विश्वास उत्पन्न हो सके ।

5.5 अधिकरणों में न्यायिक शक्तियां निहित होती हैं जो अब तक न्यायालयों में निहित थीं और उनके द्वारा प्रयुक्त की जाती थीं । अधिकरणों के पास वही स्वतंत्रता, सुरक्षा और सामर्थ्य होनी चाहिए जो न्यायाधीशों के पास होती हैं । तथापि, यदि अधिकरणों का आशय एक क्षेत्र में सेवा करना है जिसमें विशे-ा ज्ञान या विशे-ा सत्ता की आवश्यकता होती है तो न्यायिक सदस्यों के साथ-साथ तकनीकी सदस्यों की नियुक्ति हमेशा स्वागतयोग्य है क्योंकि वे वह सामग्री प्रदान कर सकते हैं जो न्यायिक सदस्यों के पास नहीं मिल सकती । जब कोई अधिकारिता लंबित मामलों और विलंबित न्यायालय कार्यवाहियों के आधार पर न्यायालयों से अंतरित की जाए तो जहां इस प्रकार अंतरित अधिकारिता में कोई तकनीकी पहलु नहीं होते जो विशे-ाज्ञों की सहायता की आवश्यकता पड़े, वहां अधिकरणों में सामान्यतः केवल न्यायिक सदस्य हों । किंतु जहां अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए तकनीकी या विशे-ा पहलुओं में जांच और विनिश्चय किए जाने हों वहां तकनीकी सदस्यों की उपस्थिति उपयोगी और आवश्यक होगी । सब अधिकरणों में तकनीकी सदस्यों की अंधाधुंध नियुक्ति से उसके कामकाज को कमजोर करनेवाला तथा प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा ।[80]

5.6 एल. चन्द्र कुमार (उक्त) वाले मामले में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि अर्हताएं, नियुक्तियां, कार्यकाल और सेवाशर्तों के वि-ाय में एकरूपता के साथ अनेक अधिकरण वर्तमान अधिकरण तंत्र के प्रभावी कामकाज में बड़ी चिंता के कारण है । अतः यह वांछनीय है कि सभी अधिकरणों को एक केंद्रक एजेंसी के अधीन रखा जाए जो अधिकरणों के कामकाज को मानीटर करे तथा नियुक्ति तंत्र में एकरूपता सुनिश्चित करे ।

5.7 कार्मिक, लोक व्यथा, विधि और न्याय वि-ायक विभाग से संबंद्ध संसदीय स्थाई समिति ने प्रशासनिक अधिकरण (संशोधन) विधेयक, 2003 पर अपनी 17वीं रिपोर्ट में एल. चन्द्र कुमार (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय के प्रति निर्देश किया था और यह मत व्यक्त किया था-

---

[77] भारत संघ बनाम आर. गांधी, अध्यक्ष मद्रास अधिवक्ता संघ (2010) 11 एस. सी. 1899 भी देखिए ; तथा वलेंटे बनाम साम्राज्ञी (1985) 2 एस.सी. आर. 673.

[78] उच्चतम न्यायालय अभिलेख अधिवक्ता संघ बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 2016 एस.सी. 117.

[79] ए. आई. आर. 1987 एस.सी. 386.

[80] मद्रास बार एसोसिएशन बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 2015 एस.सी. 1571.

''जब तक ऐसे सभी अधिकरणों के लिए एक पूर्णतः स्वतंत्र एजेंसी स्थापित न की जाए तब तक यह वांछनीय है कि ऐसे सभी अधिकरणों को, जहां तक संभव हो, एक केंद्रक मंत्रालय के अधीन होना चाहिए जो इन अधिकरणों के कामकाज पर नजर रखने की स्थिति में हो । इसके अनेक कारण हैं कि वह मंत्रालय समुचित रूप से विधि मंत्रालय हो ...।'

अतः यह समुचित है कि अधिकरणों के समस्त कार्यों में एकरूपता सुनिश्चित करने की दृ-टि से केंद्रीय सरकार अधिकरणों के कामकाज को मानीटर करने का कार्य किसी एक केंद्रक एजेंसी, अधिमानता विधि और न्याय मंत्रालय के अधीन सोंपने के बारे में विचार करे ।

ख. अर्हताएं तथा नियुक्ति

5.8 प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 6 में अर्हताएं विहित हैं । इस धारा के अनुसार कोई व्यक्ति अध्यक्ष बनने के लिए तब तक अर्हित न होगा जब तक कि वह उच्च न्यायालय का न्यायाधीश न हो या न रहा हो । अध्यक्ष तथा केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण का प्रत्येक अन्य सदस्य रा-ट्रपति द्वारा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से नियुक्त किए जाते हैं । राज्य के प्रशासनिक अधिकरण का अध्यक्ष और प्रत्येक अन्य सदस्य तथा संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण का अध्यक्ष और प्रत्येक अन्य सदस्य रा-ट्रपति द्वारा संबंधित राज्य के राज्यपाल के परामर्श से नियुक्त किए जाते हैं । प्रशासनिक अधिकरण (संशोधन) विधेयक, 2002 के अनुसार अर्हक मानदंड निम्न प्रकार अधिकथित किया गया है :–

''केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, राज्य प्रशासनिक अधिकरण और किसी भी संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण में अध्यक्ष की नियुक्ति के लिए उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को पात्र बनाने के लिए, तथा अध्यक्ष और इन अधिकरणों के अन्य सदस्यों की नियुक्ति में एकरूपता लाने के लिए अधिनियम में निम्नलिखित संशोधन किए जाने प्रस्तावित हैं अर्थात् (क) अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (1) का संशोधन करना ताकि यह उपबंध किया जा सके कि कोई व्यक्ति अध्यक्ष नियुक्त होने के लिए तब तक अर्हित न होगा जब तक कि वह उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश न हो या न रहा हो अथवा उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति न हो या न रहा हो ; (ख) अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (3) से (5) के स्थान पर नई उपधाराएं रखना ताकि रा-ट्रपति द्वारा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से तथा केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के अध्यक्ष और प्रत्येक अन्य सदस्य की नियुक्ति की स्थिति में रा-ट्रपति द्वारा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श के अलावा राज्य प्रशासनिक अधिकरण और संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण की स्थिति में संबंधित राज्यों के राज्यपाल से परामर्श के लिए उपबंध किया जा सके ।.....।'

5.9 जैसाकि उच्चतम न्यायालय द्वारा सैकड़ों निर्णयों में रूपरेखा दी गई है एक सांविधानिक अपेक्षा यह है कि जो व्यक्ति विधि की अर्हता रखता हो न्यायिक प्रशिक्षण प्राप्त हो और पर्याप्त अनुभव रखता हो वह इन अधिकरणों में नियुक्त किया जाना चाहिए ताकि वह प्रभावकारी न्याय कर सके । अधिकरणों को विधि के प्रश्नों और विधि के सूक्ष्म भेदों को अंतर्वलित करने वाले मामलों का न्यायनिर्णय करने का कर्तव्य सौंपा गया है । अतः नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन होने से उनके कामकाज में लोगों की आस्था बढ़ेगी । न्यायिक सदस्य ऐसा व्यक्ति हो जिसके पास विधि की डिग्री हो, न्यायिक रूप से प्रशिक्षित मस्ति-क हो और न्यायिक कार्य करने का अनुभव हो । जब

संबंधित पदों पर नियुक्ति नीचे इंगित रूप से की जाए तभी नियुक्ति की प्रणाली में एकरूपता का उद्देश्य पूरा हो सकता है :–

(i) जो व्यक्ति उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हो या रहा हो अथवा उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति हो या रहा हो वह अध्यक्ष के पद पर,

(ii) जो व्यक्ति उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो या रहा हो अथवा अधिवक्ता रहा हो जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति के लिए पात्र हो, उपाध्यक्ष के पद पर,

(iii) जो व्यक्ति उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रहा हो या अधिवक्ता हो जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति का पात्र हो, न्यायिक सदस्य के पद पर ।

5.10 यदि उच्च न्यायालय की अधिकारिता किसी अधिकरण को अंतरित की जाती है तो नवगठित अधिकरण के सदस्यों के पास उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के समकक्ष अर्हता होनी चाहिए । इसी प्रकार, यदि अंतरित अधिकारिता और कार्यों का निर्वहन जिला न्यायाधीशों द्वारा किया जाता है तो अधिकरण में नियुक्त सदस्यों के पास जिला न्यायाधीशों के समतुल्य अर्हताएं हों तथा उनके स्तर के समकक्ष हों । **मद्रास बार एसोसिएशन** बनाम **भारत संघ**[81] वाले मामले में पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ वाले उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किया था । उन महत्वपूर्ण प्रश्नों में से दो प्रश्न ये थे --

1. क्या वरि-ठ न्यायालय (अर्थात् उच्च न्यायालय) में निहित न्यायनिर्णयन कार्यों का आनुकल्पिक न्यायालय/अधिकरण (वर्तमान मामले में एन.टी.टी.) में अंतरण करने से मान्य सांविधानिक परम्पराओं का अतिक्रमण होता है ?

2. क्या नवसृजित न्यायालय/अधिकरण को अधिकारिता का अंतरण करते समय प्रतिस्थापित न्यायालय के मानदंड और प्रास्थिति को कायम रखना अनिवार्य है?

5.11 पहले प्रश्न का उत्तर ''नहीं'' में दिया गया जबकि दूसरे प्रश्न का उत्तर ''हां'' में दिया गया । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि पूर्व में एक वरि-ठ न्यायालय में निहित न्यायनिर्णयन कार्य आनुकल्पिक न्यायालय/अधिकरण में निहित करने के विधान के अधिनियमन से अपने आपमें किसी सांविधानिक उपबंध का उल्लंघन नहीं होता । किंतु फिर न्यायालय ने जोरदार शब्दों में कहा कि, ''यदि न्यायिक शक्ति का अंतरण करने से संबंधित विधान बनाते समय संसद् यह सुनिश्चित नहीं करती कि नवनिर्मित न्यायालय/अधिकरण उस न्यायालय के प्रमुख लक्षणों और मानदंडों के अनुरूप है, जिसे प्रतिस्थापित करना ईप्सित है तो यह संविधान के बनुनियादी ढांचे का अतिक्रमण होगा ।'' न्यायालय ने यह स्प-ट किया कि जब कभी न्यायनिर्णयन कार्यों का अंतरण करने के लिए विधान बनाया जाएगा, तो यह सुनिश्चित किया जाएगा कि --

1. ''प्रतिस्थापित किए जाने के लिए अभी-ट न्यायालय की सभी परम्पराएं/रूढ़ियां/ परिपाटियां सृजित न्यायालय/अधिकरण में समावि-ट करनी होंगी ।

2. न्यायालय/अधिकरण के सदस्य जिसे न्यायनिर्णयन कार्य अंतरित किए जाएं, वे न्यायाधीश/सदस्य हों जिनकी प्रास्थिति और अर्हताएं उस न्यायालय के अनुरूप हों जिससे

[81] (2014) 10 एस. सी. सी. 1.

न्यायनिर्णयन कार्य अंतरित किए गए हैं ।

5.12 न्यायालय ने पैरा 15 के उप पैरा VII में अपने पूर्व विनिश्चय का हवाला देते हुए निम्न प्रकार मत व्यक्त किया --

> "..... न्यायिक शक्ति से युक्त अधिकरण के पास वैसी ही स्वाधीनता, सुरक्षा और सामर्थ्य होनी चाहिए जैसी उन न्यायालयों के पास होनी हैं जिनका स्थान अधिकरणों को लेना है । न्यायिक कार्य करने वाले अधिकरणों के सदस्य उन स्रोतों से ही लिए जाएं जिनके पास विधि में विशे-ाज्ञता है और न्यायिक कार्य करने की क्षमता है । तकनीकी सदस्यों को अधिकरणों में नियुक्त किया जा सकता है जहां मामलों के निपटारे के लिए तकनीकी विशे-ाज्ञता अनिवार्य है, अन्यथा नहीं ..... जहां अधिकरणों को अंतरित न्यायनिर्णयन प्रक्रिया में कोई विशे-ाीकृत कौशल, ज्ञान या विशे-ाज्ञता अंतर्वलित नहीं है वहां तकनीकी सदस्यों (न्यायिक सदस्यों के अतिरिक्त या उनके स्थान पर) की नियुक्ति का उपबंध न्यायपालिका की स्वाधीनता पर तथा विधि सम्मत शासन पर विभ्रम और अतिलंघन का स्प-ट मामला होगा । उन सदस्यों की प्रास्थिति जो अधिकरण में आ जाएंगे, उस अधिकारिता पर निर्भर करेंगी जो अधिकरण को अंतरित की जा रही है ।"

5.13 न्यायालय ने आगे मत व्यक्त किया कि, "तकनीकी सदस्य अधिकरणों में नियुक्त किए जा सकते हैं जहां तकनीकी सदस्य मामलों के निपटारे के लिए अनिवार्य हैं ; अन्यथा नहीं ।"

5.14 तकनीकी सदस्य/विशे-ाज्ञ सदस्य के पद के लिए आयोग का मत है कि इस पद पर नियुक्ति उन व्यक्तियों की होनी चाहिए जिनकी योग्यता, नि-ठा सिद्ध हैं तथा जिनके पास विशे-ा ज्ञान तथा वृत्तिक अनुभव या विशे-ाज्ञता है जो क्षेत्र विशे-ा में 15 व-र्ा से कम नहीं है अर्थात् वह क्षेत्र जिससे उस अधिकरण का संबंध है । तकनीकी सदस्य/विशे-ाज्ञ सदस्य वहीं नियुक्त किए जाने चाहिए जहां अधिकरणों का आशय उस क्षेत्र की सेवा करना है जिसके लिए विशे-ाीकृत ज्ञान या विशे-ाज्ञता या वृत्तिक अनुभव अपेक्षित है तथा अधिकारिता के प्रयोग के लिए तकनीकी या विशे-ा पहलुओं पर विचार करना तथा उनके बारे में विनिश्चय किया जाना अंतर्वलित है ।

5.15 यदि अपेक्षित हो तो प्रशासनिक सदस्य ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो भारत सरकार के सचिव या केंद्रीय या राज्य सरकार के अधीन दो व-र्ा किसी अन्य समकक्ष पद पर रहे हों जिसका वेतनमान भारत सरकार के सचिव के बराबर हों ; अथवा भारत सरकार के अपर सचिव रहे हों या केंद्रीय या राज्य सरकार के अधीन किसी अन्य समकक्ष पद पर तीन व-र्ा का अनुभव रखते हों ।

5.16 आयोग का मत है कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की अध्यक्षता में या उनके न्यायनिर्देशिती के रूप में उच्चतम न्यायालय के पीठासीन न्यायाधीश की अध्यक्षता में चयन बोर्ड/समिति, जिसमें केंद्रीय सरकार के दो नामनिर्देशिती हों जो भारत सरकार के सचिव की पंक्ति से नीचे के न हों, अधिकरण के अध्यक्ष ; उपाध्यक्ष और न्यायिक सदस्यों की नियुक्ति के लिए गठित की जाएगी । प्रशासनिक सदस्य, लेखापाल सदस्य, तकनीकी सदस्य, विशे-ाज्ञ सदस्य या राजस्व सदस्य के चयन के लिए, चयनसमिति होगी जिसका अध्यक्ष केंद्रीय सरकार का नामनिर्देशिती होगा जिसकी नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से होगी ।

5.17 उन विभिन्न विधानों की संवीक्षा पर, जिनसे विभिन्न अधिकरणों के गठन का ढांचा बनता

है, यह उल्लेखनीय है कि उनमें से अधिकांश उच्च न्यायालय को ऐसी अधिकारिता से वंचित करते हैं तथा विनिर्दि-ट क्षेत्रों में उसे अधिकरणों को प्रदान करते हैं । तथापि इन अधिकरणों में अध्यक्ष/सदस्य के रूप में नियुक्त किए जाने वाले व्यक्तियों की अर्हताओं, नियुक्ति की रीति, नियुक्ति की अवधि आदि वि-नयक उपबंध मद्रास बार एसोसिएशन (पूर्वोक्त) और अन्य अनेक विनिश्चयों में अधिकथित मानदंडों के अनुरूप नहीं हैं । इसके अलावा, उनकी स्वाधीनता की रक्षा/रक्षोपाय के कोई उपबंध इन अधिनियमितियों में नहीं मिलते । इसके विपरीत इन विधानों में अंतर्वि-ट प्रशासनिक नियंत्रण निहित करने जैसे कुछ उपबंध अधिकरणों को कार्यपालिका की ताबेदार बना देते हैं जिसके विवादों का वे विनिश्चय करते हैं ।

5.18 प्रज्ञा के सिद्धांत स्वरूप अधिकरण के अध्यक्ष/सदस्यों के चयन के लिए बनाई गई समिति का अध्यक्ष भारत सरकार का सचिव इस कारण से नहीं होगा कि केंद्रीय सरकार ऐसे अधिकरण के समक्ष हर मुकदमें में पक्षकार होती है ।

ग. पुनर्नियुक्ति

5.19 पुनर्नियुक्ति एक महत्वपूर्ण पहलु है । इसका संस्था के कार्यकरण में स्वतंत्रता और नि-पक्षता से सीधा संबंध है । यह निर्विवाद है कि पुनर्नियुक्ति के किसी भी उपबंध से अध्यक्ष/सदस्यों की स्वाधीनता खतरे में पड़ जाएगी । कोई व्यक्ति मामले का विनिश्चय ऐसी रीति से करने के लिए तैयार हो सकता है जिससे उनकी पुनर्नियुक्ति सुनिश्चित हो जाए । इस बात को ध्यान में रखते हुए, नियुक्ति और कार्यकाल बढ़ाने से संबंधित मामलों को कार्यपालिका के मध्यक्षेप से बचाना चाहिए ।

घ. रिक्तियां

5.20 किसी भी पद पर रिक्ति को लंबे समय तक लटकाने से बचने के लिए नियुक्ति की प्रक्रिया यह सुनिश्चित करने के लिए काफी पहले शुरू करदेनी चाहिए कि रिक्ति किसी भी परिहार्य विलंब के बिना भरी जाए, क्योंकि सामान्य अनुभव यह है कि अधिकरणों में रिक्तियां समय से न भरे जाने के कारण अधिकरणों का कामकाज प्रभावित होता है । अतः चयन प्रक्रिया यथा संभव शीघ्र बल्कि रिक्ति होने से पूर्व छह मास के भीतर प्रारंभ कर दी जानी चाहिए ।

ङ. कार्यकाल और सेवाशर्तें

5.21 फिलहाल, अधिकरणों के सदस्यों के सेवानिवृत्त होने की आयु में कोई एकरूपता नहीं है। अतः प्रकट है कि ऐसे सदस्यों की सेवानिवृत्ति की आयु एकरूप नियत करने की नितांत आवश्यकता है । आयोग ने 'अधिकरणों के अध्यक्षों और सदस्यों की सेवानिवृत्ति आयु- एकरूपता की आवश्यकता' वि-नयक अपनी 232वीं रिपोर्ट में सेवानिवृत्ति की आयु में एकरूपता की कमी का उल्लेख करते हुए यह मत व्यक्त किया था --

> ''यदि उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश या मुख्य न्यायमूर्ति जो 62 व-र्ा की आयु में सेवानिवृत्त होते हैं, अधिकरणों में कार्यभार ग्रहण करना चाहते हैं ..... सेवानिवृत्ति के पश्चात् अधिकरणों में उनका कार्यकाल 2-3 व-र्ा हो सकता है । प्रकट है, जब उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश किसी अधिकरण में नियुक्त होना चाहते हैं तो उनकी सेवानिवृत्ति आयु कम से कम 70 व-र्ा हो क्योंकि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में सेवानिवृत्ति की तारीख को वे 65 व-र्ा के होंगे ।

.... इसी प्रकार अध्यक्ष और सदस्यों की सेवानिवृत्ति आयु में कोई अंतर नहीं होना चाहिए जो न्याय तंत्र अर्थात् उच्च न्यायालयों या उच्चतम न्यायालय से आते हैं और वह आयु एकरूपता से 70 व-र् होनी चाहिए । एक अन्य परिप्रेक्ष्य में, सदस्यों के वि-नय में अंतर हो सकता है । अधिकरणों में सदस्यों की दो शाखाएं हैं -- न्यायिक और प्रशासनिक । जो सरकार में प्रशासनिक शाखा में पदभारग्रहण करते हैं उनकी सरकार से सेवानिवृत्ति की आयु 60 व-र् है । उनके मामले में अधिकरण के सदस्य के रूप में 5 व-र् का उनका कार्यकाल पर्याप्त हो सकता है । तथापि सदस्यों की सेवानिवृत्ति आयु में कोई अंतर नहीं किया जासकता चाहे वह न्यायिक शाखा से आए हों या प्रशासनिक शाखा से । उनकी शाखा कोई भी हो, सेवानिवृत्ति आयु को एकरूपता से नियत किए जाने की आवश्यकता है ।''

5.22 आयोग की राय है कि अधिकरणों के अध्यक्षों और अन्य सदस्यों की सेवाशर्तों में एकरूपता इस तंत्र के सुचारू रूप से काम करना सुनिश्चित करने के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण अपेक्षा है । अध्यक्ष पद पर तीन व-र् रहे या जब तक वह 70 व-र् के हों जो भी पहले हो, उपाध्यक्ष और सदस्यों को तीन व-र् पद पर रहना चाहिए या जब तक वह 67 व-र् की आयु पर पहुंचे जो भी पहले हो । इस तंत्र के सुचारू रूप से काम करना सुनिश्चित करने के लिए अधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यों की सेवाशर्तों में एकरूपता होना समुचित होगा ।

5.23 अध्यक्ष की सेवा शर्तें ; अन्य भत्ते और प्रसुविधाएं वैसी रखना समुचित होगा जैसी समय-समय पर पुनरीक्षित 250,000/- रु. के वेतन का पद धारण करने वाले केंद्रीय सरकार के अधिकारी के लिए स्वीकार्य हैं । अधिकरण के सदस्य की सेवाशर्तें, अन्य भत्ते और प्रसुविधाएं वैसी होंगी जैसी समय-समय पर पुनरीक्षित 225,000/- रु. वेतन के पद धारण करने वाले केंद्र सरकार के अधिकारी के लिए स्वीकार्य हैं । अधिकरण के पीठासीन अधिकारी/सदस्य की सेवा शर्तें, अन्य भत्ते और प्रसुविधाएं (जिस पर जिला न्यायाधीशों द्वारा प्रयुक्त अधिकारिता और किए गए कार्यों को अंतरित किया जाता है) ऐसी होंगी जैसी जिला न्यायाधीश के समान वेतन पाने वाले केंद्र सरकार के अधिकारी के लिए स्वीकार्य हैं ।

5.24 केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 6(2) (घ) के उपबंधों की दृ-टि से कोई अधिवक्ता जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश बनने के लिए अर्हित है, न्यायिक सदस्य नियुक्त किया जा सकता है । उसका कार्यकाल पांच व-र् होगा और उसे दूसरी पदावधि अर्थात् आगे 5 व-र् की अवधि के लिए पुनः नियुक्त किया जा सकता है, इससे आगे नहीं । यदि उसे 40 व-र् की आयु पर नियुक्त किया जाता है तो वह 45 व-र् की आयु पर न्यायिक सदस्य नहीं रहेगा और यदि उसका कार्यकाल बढ़ा दिया जाता है तो वह 50 व-र् की आयु पर सदस्य नहीं रहेगा । अधिकरण में अधिकतम 10 व-र् काम करने के बाद ऐसे सदस्य के लिए अपनी वकालत (विधि व्यवसाय) को पुनः पटरी पर लाना कठिन होगा । परिणामस्वरूप अच्छी वकालत करने वाला व्यक्ति ऐसे अधिकरण में पदभार ग्रहण करने के लिए हतोत्साहित होता है । वांछनीय यह है कि शुरू में ऐसे अधिवक्ता को 2 व-र् के लिए तदर्थ आधार पर नियुक्त किया जाए । बाद में उसकी दक्षता और उपयुक्तता का आकलन करके उसकी पु-टि की जाए । बाद में उसे अधिवर्-िता की आयु पर पहुंचने तक उस हैसियत में काम करने दिया जाए । आनुकल्पिक रूप से आरंभिक नियुक्ति युक्तियुक्त रूप से लंबी अवधि के लिए होनी चाहिए तथा उपयुक्त मामलों में, वह नवीकरण के अध्यधीन भी हो सकती है ।

5.25 उन कानूनों में उपबंधित अध्यक्ष और सदस्यों को हटाने की प्रक्रिया जिनके अधीन अधिकरण स्थापित किया गया है, उपाबंध II में दी गई है । यह स्थिर विधिक सिद्धांत है कि साधारण खंड अधिनियम 1877 की धारा 16 के उपबंधों की दृ-टि से 'नियुक्ति' पद के अंतर्गत सेवा पर्यवसान या सेवा से हटाना भी है ।[82]

5.26 आयकर अधिनियम, 1961 के उपबंधों के अधीन आयकर (अपील) अधिकरण में अधिवक्ता को सदस्य के रूप में नियुक्त किया जाता है और वह अधिवर्-िता की आयु प्राप्त होने तक पदासीन रहता है । 2017 के अधिनियम द्वारा सुसंगत उपबंधों का संशोधन हुआ है जिसके द्वारा धारा 252-क अंतःस्थापित की गई है । इस उपबंध के अधीन नियुक्ति की सीमा शर्तें और सेवा शर्तें केंद्रीय सरकार द्वारा अधिकथित की जानी हैं जैसाकि वित्त अधिनियम, 2017 की धारा 184 में उपबंध किया गया है । केंद्रीय सरकार ने अधिकरण, अपील अधिकरण और अन्य प्राधिकरण (सदस्यों की अर्हताएं, अनुभव और अन्य सेवा शर्तें) नियम 2017 अधिसूचित किए हैं । पूर्वोक्त व्यवस्था द्वारा केवल अधिकरण की प्रास्थिति को ही नीचे नहीं किया गया है बल्कि अध्यक्ष एवं सदस्यों के पद के लिए पात्रता कसौटी को भी घटा दिया गया है । **केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण (प्रधान शाखा) अधिवक्ता संघ** (उसके अध्यक्ष के माध्यम से) बनाम **भारत संघ**[83] वाले मामले में उसकी विधिमान्यता को चुनौती दी गई है और उच्चतम न्यायालय ने भारत संघ और अन्य प्रत्यर्थियों को तारीख 21 अगस्त, 2017 के आदेश द्वारा कारण बताओ सूचना जारी की है । वेतन और भत्ते[84], पेंशन, उपदान और भवि-य निधि[85] और अन्य प्रसुविधाएं जैसे मकान किराया भत्ता, परिवहन भत्ता तथा अन्य निबंधन और शर्तें अधिकरण के सभी सदस्यों के लिए यथासाध्य और यथासंभव एक समान होंगी ।

---

[82] प्रद्यात कुमार बोस बनाम कलकत्ता उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति, ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 285 ; आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति और अन्य बनाम एल. वी. ए. दीशितुलु और अन्य, ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 193 ; प्रबंधक, सरकारी शाखा मुद्रणालय और एक अन्य बनाम डी. वी. बेलियका ; ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 429 ; तथा तमिल नाडु राज्य और अन्य बनाम एम. एन. सुंदरराजन, ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 2084.

[83] 2017 की रिट याचिका सं. 640.

[84] वित्त अधिनियम, 2017. 8.4, वेतन और भत्ते ।

[85] पूर्वोक्त 8.12 पेंशन, उपदान और भवि-य निधि ।

अध्याय 6

संविधान के अधीन न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति

6.1 न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को बराबर संविधान का बुनियादी तत्व माना गया है । बुनियादी तत्व संविधान का आधारभूत ढांचा है उसे अन्यथा प्रभावित नहीं किया जा सकता ; सांविधानिक संशोधनों को भी अवैध घोन्ति कर दिया जाएगा । संविधान न्यायपालिका को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदत्त करता है । वह प्रकृति से अनन्य है । संविधान के अधीन संविधान और उसके अधीन निर्मित विधियों का निर्वचन करना न्यायपालिका का उत्तरदायित्व है । अतः विधि अधिनियमित करने का काम शुरू करने से पहले अधिकरणों के गठन की रूपरेखा तथा उनके ऊपर न्यायिक नियंत्रण को परिभान्ित करना आवश्यक है ।

6.2 'न्यायिककल्प' शब्द मंत्रियों या सरकारी विभागों द्वारा प्रयुक्त कतिपय प्रकार की शक्तियों को वर्णित करने के लिए सामान्यतया प्रयुक्त किया जाता है किंतु वह न्यायिक पुनर्विलोकन के द्वारा उनके प्रयोग की रीति पर न्यायिक नियंत्रण की एक मात्रा के अध्यधीन होता है । इसका प्रयोग उन शक्तियों पर किया जाता है जिनका प्रयोग तभी किया जा सकता है जब कुछ तथ्य विद्यमान पाए जाते हैं, तथा इससे इंगित होता है कि ये तथ्य 'नैसर्गिक न्याय' नामक नियमों की संहिता के अनुरूप होने अनिवार्य हैं । सर आइवर जेनिंग्स के अनुसार 'न्यायिककल्प' पद शक्तियों के पृथक्करण के बारे में मिथ्या आधारिका से व्युत्पन्न अनेक आभासी विश्ले-णात्मक पदों में से एक माना गया प्रतीत होता है ।[86]

6.3 **पूज्यपाद केशवानंद भारती श्रीपादगलवरु** बनाम **केरल राज्य**[87] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि यह स्थापित करने के लिए कि कोई सांविधानिक उपबंध अनिवार्य तत्व है, वह दर्शाया जाए कि वह मूलभूत है और संसद् की संशोधन शक्तियों को आबद्ध करता है । न्यायिक पुनर्विलोकन संविधान के बुनियादी ढांचे का अंग है और किसी भी ढंग से उसमें कटौती संविधान के बुनियादी ढांचे के अतिक्रमण के समान होगी ।

6.4 **इंदिरा नेहरू गांधी** बनाम **राजनारायन**[88] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 329क के खंड (4) को अवैध घोन्ति कर दिया था जो संविधान (उनतालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1975 द्वारा निर्वाचन को भूतलक्षी प्रभाव से इस आधार पर विधिमान्य करने के लिए अंतःस्थापित किया गया था कि ''यह स्वतंत्र और नि-पक्ष'' निर्वाचन का अतिक्रमण करता है जो लोकतंत्र का अनिवार्य अनुबंध है और संविधान के मूलभूत ढांचे का अंग है ।''

6.5 **मिनर्वा मिल्स लिमिटेड** बनाम **भारत संघ**[89] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि एक अनुच्छेद के संशोधन में संविधान के बुनियादी ढांचे को बर्बाद करने की सामर्थ्य हो सकती

---

[86] वेड. एच. डब्ल्यु. आर. ''क्वासी ज्युडिशियल एंड इट्स वैकग्राउंड'' 2 सी. एस. जे. 216 (1949).

[87] ए. आई. आर. 1973 एस.सी. 1461.

[88] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1590.

[89] ए. आई. आर. 2980 एस. सी. 1789 ; साथ में देखिए कुलदीप नायर बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 3127 ; और नागराज वामन राव बनाम भारत संघ, (1981) 2 एस.सी. सी. 362.

है जो इस अनुच्छेद के अल्पीकरण की प्रकृति और संदर्भ पर निर्भर करता है यदि ऐसे अनुच्छेद द्वारा प्राप्त करने के लिए अभी-ट प्रयोजन संविधान के बुनियादी ढांचे का अनिवार्य लक्षण है । न्यायालय ने न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के महत्व को इन शब्दों में दोहराया --

> "..... न्यायिक पुनर्विलोकन हमारे संविधान का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है जिसे संविधान के बुनियादी ढांचे को प्रभावित किए बिना अल्पीकृत नहीं किया जा सकता । यदि किसी संविधान संशोधन द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति छीन ली जाती है और यह उपबंध किया जाता है कि विधायिका द्वारा बनाई गई किसी विधि की विधिमान्यता किसी भी आधार पर प्रश्नगत नहीं की जाएगी, भले ही वह विधायिका की विधायी क्षमता के परे हो अथवा किसी मूल अधिकार का अतिक्रमण करती हो, उसे संविधान के अतिलंघन से कम नहीं आंका जाएगा, क्योंकि उससे संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण का मजाक बन जाएगा तथा मूल अधिकार निरर्थक और व्यर्थ हो जाएंगे ।"

6.6 **आई.आर. कोइलो** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[90] वाले मामले में याची ने 9वीं अनुसूची में डाली गई अनेक केंद्रीय और राज्य विधियों को चुनौती दी थी । नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया था कि "किसी भी विधि की विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी जा सकेगी कि वह संविधान के बुनियादी ढांचे को बर्बाद या क्षतिग्रस्त करती है ।" न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि--

> "समता, विधि सम्मत शासन, न्यायिक पुनर्विलोकन और शक्तियों का पृथक्करण संविधान पूरी तरह बुनियादी ढांचे के अंग हैं । इनमें से प्रत्येक संकल्पना एक दूसरी से संसक्त है । यदि विधि के समक्ष समता नहीं तो विधिसम्मत शासन नहीं । यदि अतिक्रमण का न्यायिक पुनर्विलोकन न हो तो ये निरर्थक हो जाएंगे । यदि विधायी, कार्यपालक और न्यायिक शक्तियां एक ही अंग में निहित हों तो ये सब निरर्थक हो जाएंगी । अतः यह विनिश्चय करने का कर्तव्य कि क्या सीमा का अतिलंघन हुआ है, न्यायपालिका पर डाला गया है । "

6.7 **मद्रास बार एसोसिएशन** वाले मामले मामले में पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया था--

> "..... यदि न्यायिक शक्ति के अंतरण से संबंधित विधान बनाते समय संसद् यह सुनिश्चित न करे कि नवनिर्मित न्यायालय/अधिकरण प्रतिस्थापित किए जाने वाले न्यायालय के प्रमुख लक्षणों और मानदंडों के अनुरूप है तो संविधान के बुनियादी ढांचे का अतिक्रमण हो जाएगा ।"

6.8 **सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स आन रिकार्ड एसोसिएशन** बनाम **भारत संघ**[91] वाले मामले में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि, "अनुच्छेद 124क(1) का खंड (घ) जो उपबंध करता है कि रा-ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग के सदस्यों के रूप में दो प्रख्यात व्यक्तियों को शामिल किया जाए, अनेक कारणों से संविधान की शक्ति वाह्य है । उसे संविधान के बुनियादी ढांचे का अतिक्रमण भी ठहराया गया है ।

---

[90] ए. आई. आर. 2007 एस.सी. 861.

[91] ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 117.

6.9 संविधान के अनुच्छेद 50 में अधि-ठापित शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को ऐसे अधिकरणों पर न्यायपालिका के नियंत्रण तथा रिट अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णयन की शक्ति तथा संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा अधिकरणों पर अधीक्षण की शक्ति के प्रकाश में देखना होगा । उदाहरण के लिए, सूची 2 के अंतर्गत एक खास राज्य वि-नय के लिए राज्य द्वारा सृजित न्यायनिर्णयन अधिकरण हो सकता है । इस प्रकार संसद् ऐसे वि-नय के लिए अधिकरण का सृजन नहीं कर सकती जो अनन्यतः राज्य सूची में है और उक्त वि-नय से उत्पन्न होने वाले विवाद के न्यायनिर्णयन के लिए राज्य विधानमंडल ही अधिकरण का गठन कर सकता है ।

6.10 **एस. पी. सम्पत कुमार** वाले मामले में प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की विधिमान्यता को चुनौती इस आधार पर दी गई थी कि अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय की तथा संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालयों की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का अपवर्जन किया गया है । अधिनियम की धारा 6, जिसके अंतर्गत अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और न्यायिक सदस्यों तथा प्रशासनिक सदस्यों की अर्हताएं अंकित की गई हैं, रचना और नियुक्ति के ढंग के आधार पर अंकित की गई हैं, को भी चुनौती दी गई थी । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 6(ग) इस आधार पर अवैध घोनित करनी होगी कि सचिव स्तर के अधिकारी न्यायिक कार्य करने वाले अधिकरण के सदस्य नहीं हो सकते । तथापि, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 28, जो अनुच्छेद 222/227 के अधीन उच्च न्यायालयों की अधिकारिता को अपवर्जित करती है, असांविधानिक नहीं है । यह भी निर्णय दिया गया था कि यह धारा न्यायिक पुनर्विलोकन का पूर्णतः वर्जन नहीं करती है ।

6.11 न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि 1985 के अधिनियम के अधीन प्रशासनिक अधिकरण उच्च न्यायालयों के प्रतिस्थानी हैं तथा अनुच्छेद 14, 15 और 16 को अंतर्वलित करने वाले सभी सेवा मामलों में कार्यवाही करते हैं, तथा उसने अधिकरण के अध्यक्ष की अर्हताएं बदलने की सलाह दी । परिणामस्वरूप 1987 में अधिनियम का संशोधन किया गया । प्रशासनिक अधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 1987 द्वारा उक्त अधिनियम की धारा 6(1)(ग) को अभिखंडित कर दिया गया और धारा 6(7), जो भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से अधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और अधिकरण के सदस्यों की नियुक्ति के लिए उपबंध करती थी, प्रतिस्थापित कर दी गई ।

6.12 **टाटा सेल्युलर** बनाम **भारत संघ**[92] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने पुनः न्यायिक पुनर्विलोकन की परिधि पर विचार किया । उस मामले में कतिपय काम करने के लिए लोक प्राधिकरण द्वारा दी गई निविदा को चुनौती दी गई थी । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि --

> ''प्रशासनिक मामलों में न्यायिक तलाश संविदागत या राजनीतिक प्रकृति के मामलों का अथवा सामाजिक नीतियों का विनिश्चय करने के प्रशासनिक विवेकाधिकार के बीच ठीक संतुलन बनाए रखने की होती है, इस प्रकार वे अनिवार्यतः न्याय नहीं हैं किंतु किसी भी अनुचित कार्य का उपचार करने की आवश्यकता है । ऐसी अनुचित कार्रवाई को न्यायिक पुनर्विलोकन द्वारा ठीक कर दिया जाता है ।''

---

[92] (1994) 6 एस. सी. सी. 651.

6.13 **सम्पत कुमार** वाले मामले में यह भी मत व्यक्त किया गया था कि यदि प्रशासनिक अधिकरण को उच्च न्यायालय के समान प्रभावी और प्रभावशाली प्रतिस्थानी होना है तो प्रत्येक स्थान पर जहां उच्च न्यायालय की पीठ है, प्रशासनिक अधिकरण की स्थायी या सर्किट न्यायपीठ अवश्य हो । **जे. बी. चोपड़ा** बनाम **भारत संघ**[93] में न्यायालय ने उसी निर्णय का अवलंब लेकर यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम के अधीन गठित केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण को संविधान के अनुच्छेद 309 के परंतुक के अधीन भारत के रा-ट्रपति द्वारा निर्मित नियम को संविधान के अनुच्छेद 14 और 16(1) का अतिक्रमण करने के कारण अवैध घोनित करने का प्राधिकार तथा अधिकारिता है । न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि ---

> ''उच्च न्यायालय के प्रतिस्थानी होने के कारण प्रशासनिक अधिकरण को सेवा से संबंधित सभी विवादों का न्यायनिर्णयन करने की अधिकारिता, शक्ति और प्राधिकार है । इसके अंतर्गत सांविधानिक विधिमान्यता या अन्यथा ऐसी विधियों से संबद्ध सभी प्रश्नों के बारे में, जो संविधान के अनुच्छेद 14 और 16(1) का अतिक्रमण करते हैं, कार्यवाही करने की भी शक्ति है ।''

6.14 **एम. वी. मजूमदार** बनाम **भारत संघ**[94] वाले मामले में न्यायालय ने सम्पत कुमार (उक्त) के मामले का अवलंब लिया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अधिनियम के अधीन अधिकरणों को उच्च न्यायालयों के समकक्ष इस सीमा तक ही माना गया है कि सेवा के मामलों में न्यायनिर्णयन करते समय अधिकरणों को उच्च न्यायालयों के प्रतिस्थानी के तौर पर काम करना है, अतः अन्य सब प्रयोजनों के लिए समानता की मांग नहीं की जा सकती, और अभिनिर्धारित किया कि अधिकरण की उच्च न्यायालय से समानता केवल सेवा मामलों से संबंधित विवादों के न्यायनिर्णयन के प्रयोजन के लिए ही है न कि उनकी सेवाशर्तों के संबंध में ।

6.15 **आर. के. जैन** बनाम **भारत संघ**[95] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने न्यायिक पुनर्विलोकन की उच्च शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रशासनिक अधिकरणों की नि-प्रभावशीलता पर मनोव्यथा प्रकट की थी और प्रभावी सत्ता तथा समाधानप्रद न्याय देने में उन्हें समर्थ बनाने के लिए उपचारात्मक कदम उठाने की आवश्यकता पर बल दिया था । न्यायालय ने इस बात पर भी विचार किया था कि क्या अधिकरण अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालयों की शक्ति के निर्देश में उच्च न्यायालयों के प्रभावी प्रतिस्थानी हो सकते हैं, एम. वी. मजूमदार (उक्त) और जे. बी. चोपड़ा (उक्त) वाले मामलों में अपने पूर्व विनिश्चयों को निर्देशित किया और उनका अवलंब लिया तथा यह अभिनिर्धारित किया कि अधिकरण उच्च न्यायालयों के प्रभावकारी प्रतिस्थानी नहीं हैं ।

6.16 उस दशा में जब अधिकरण गलत अधिकारिता ग्रहण करके विधि या तथ्यों की त्रुटिपूर्ण धारणा पर अग्रसर हो जाएं अथवा, जहां कार्यवाही को विधि और/या तथ्य की दृ-टि से आक्षेपित किया जाए वहां उसे उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन के नि-कासन के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता । ऐसा निर्वचन संविधान द्वारा प्रदत्त उच्च न्यायपालिका की अधीक्षण शक्ति पर अतिलंघन के समान ही नहीं होगा अपितु भारत के संविधान के बुनियादी ढांचे के साथ छेड़छाड़ करना भी होगा । उच्चतर न्यायालयों को विधायी कार्य, न्यायिक विनिश्चय तथा प्रशासनिक

---

[93] ए. आई. आर. 1990 एस.सी. 2263.

[94] ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 2263.

[95] ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 1769.

कार्रवाई के न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदत्त की गई है ।

6.17 **एल. चन्द्र कुमार** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अनुच्छेद 323क (2) (घ), 323-ख(3) (ख) और प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती दी गई थी । एक अत्यंत महत्वपूर्ण विचारणीय पहलू यह सामने आया था कि क्या भारत के संविधान के भाग XIV -क के अधीन गठित अधिकरण न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के संबंध में उचच न्यायालयों के प्रभावी प्रतिस्थानी हो सकते हैं । न्यायालय के समक्ष विचारणीय मुद्दे निम्न प्रकार थे --

(1) क्या संविधान के अनुच्छेद 323क के खंड (2) के उपखंड (घ) द्वारा या अनुच्छेद 323ख के खंड (3) के उपखंड (घ) द्वारा यथास्थिति संसद् या राज्य विधानमंडल को प्रदत्त शक्ति, जो अनुच्छेद 323क के खंड (1) में निर्देशित विवादों और परिवादों के संबंध में अथवा अनुच्छेद 323ख के खंड (2) में विनिर्दि-ट सब या किन्हीं मामलों के बारे में, अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय की शक्ति के सिवाय सभी न्यायालयों की अधिकारिता को पूर्णतः अपवर्जित करती है, अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालयों को तथा संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय को प्रदत्त न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रतिकूल है ?

(2) क्या संविधान के अनुच्छेद 323क के अधीन या अनुच्छेद 323ख के अधीन गठित अधिकरणों के पास किसी कानूनी उपबंध/नियम की सांविधानिक विधिमान्यता को परखने की क्षमता है ?

(3) क्या ये अधिकरण, जिस रूप में ये वर्तमान में काम कर रहे हैं, न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालयों के प्रभावकारी प्रतिस्थानी कहे जा सकते हैं - यदि नहीं तो वे क्या परिवर्तन हैं जो उन्हें आधारभूत उद्देश्यों के अनुरूप बनाने के लिए अपेक्षित हैं ?

".... संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालयों में तथा अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय में निहित विधायी कार्य पर न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति संविधान का अभिन्न एवं अनिवार्य तत्व है और उसके बुनियादी ढांचे का हिस्सा है । अतः साधारणतया, विधानों की सांविधानिक विधमान्यता को परखने की उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की शक्ति को कभी भी बेदखल या अपवर्जित नहीं किया जा सकता ?

..... अपनी-अपनी अधिकारिता के भीतर सभी न्यायालयों और अधिकरणों के विनिश्चयों पर न्यायिक अधीक्षण का प्रयोग करने की उच्च न्यायालय में निहित शक्ति भी संविधान के बुनियादी ढांचे की अंग है । ऐसा इसलिए है कि ऐसी स्थिति से बराबर बचना होगा जहां उच्च न्यायालयों को सांविधानिक निर्वचन के अलावा अन्य सभी न्यायिक कार्यों से बेदखल कर दिया जाए ।

यह ध्यान देने योग्य है कि न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को साधारणतया हटाया या अपवर्जित नहीं किया जा सकता । 'साधारणतया' शब्द के प्रयोग से यह धारणा बनती है कि आपवादिक मामलों में या विशे-न परिस्थितियों में इन न्यायालयों की अधिकारिता को हटाना या अपवर्जित करना न्यायोचित ठहराया

जा सकता है । निर्णय को संपूर्ण रूप से पढ़ने पर यह स्प-ट हो जाता है कि आनुकल्पिक न्यायालयों/अधिकरणों की स्वाधीनता जिन्हें ऐसी अधिकारिता अंतरित की जाए, उसी रीति से और उसी सीमा तक संरक्षित की जाती है जिस तक वरि-ठ न्यायालयों की स्वाधीनता संविधान के अधीन संरक्षित है ।

6.18 न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 323क का खंड 2(घ) और अनुच्छेद 323ख का खंड 3(घ) उसी सीमा तक असांविधानिक हैं, जिस तक वे संविधान के अनुच्छेद 226/227 और 32 के अधीन क्रमशः उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता को अपवर्जित करती हैं । प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 28 अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन सेवा मामलों में उच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को अपवर्जित करते हैं ; उसने न्यायिक पुनर्विलोकन को पूर्णतः अपवर्जित नहीं किया क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता को अविकल रखा गया है । न्यायालय ने अभिनिर्धारित कियाकि प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 28 और अनुच्छेद 323क और 323ख के तत्वावधान में अधिनियमित अन्य सब विधानों के अधिकारिता खंडों का अपवर्जन उस सीमा तक संविधान के शक्ति वाह्य होगा जिस तक वे (अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन) उच्च न्यायालय की और (अनुच्छेद 32 के अधीन) उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता को अपवर्जित कते हैं ।

619 यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि प्रतिस्थानी भूमिका के विपरीत अनुपूरक भूमिका निभाने में प्रशासनिक अधिकरणों के विरुद्ध कोई सांविधानिक प्रति-ेध नहीं है अर्थात् अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए ऐसे अधिकरण उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के प्रतिस्थानी के रूप में काम नहीं कर सकते । संविधान के अनुच्छेद 323क और 323ख के अधीन गठित इन अधिकरणों के विनिश्चय उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष संवीक्षा के अधीन होंगे जिसकी अधिकारिता में संबंधित अधिकरण अवस्थित है ।

6.20 अनुच्छेद 323क के अधीन प्रशासनिक अधिकरण सेवा शर्तों वि-नयक सभी विवादों का विवेचन कर सकते हैं जिनके अंतर्गत, सिवाय उस अधिनियम के जिसके अधीन वह अधिकरण स्थापित है, किसी भी कानून या नियम की सांविधानिक विधिमान्यता भी है । ऐसे अधिनियम की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती देने के लिए संबंधित उच्च न्यायालय में जाना होगा । प्रशासनिक अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध रिट याचिका उस उच्च न्यायालय में दाखिल करनी होगी जिसकी उस पर अधिकारिता है तथा ऐसे विनिश्चय के विरुद्ध अपील अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय में होगी ।

6.21 **महारा-ट्र राज्य** बनाम **श्रम विधि व्यवसायी**[96] वाले मामले में न्यायालय ने **भारत बैंक** वाले मामले में अधिकथित कसौटी लागू की, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि औद्योगिक अधिकरण सिविल न्यायालय होता है और वह सिविल अधिकारिता का प्रयोग करता है । उस मामले में अधिकथित कसौटी **कूपर** बनाम **विल्सन**[97] वाले एक अंग्रेजी निर्णय पर आधारित थी जिसमें निम्नलिखित मानदंड विहित किए गए थे --

(i) पक्षकारों द्वारा अपने मामले का प्रस्तुतीकरण ;

---

[96] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 1233.

[97] (1937) 2 के. बी. 309.

(ii) पक्ष्ज्ञकारों द्वारा अक्सर तर्क की सहायता से, पेश साक्ष्य के माध्यम से तथ्यों का अभिनिश्चय ;

(iii) यदि विवाद विधि प्रश्न से संबद्ध है तो पक्षकारों द्वारा विधिक तर्क पेश किया जाने ; तथा

(iv) विनिश्चय द्वारा, जिससे तथ्य के आधार पर नि-कर्-ा द्वारा पूरे मामले का निपटारा हो जाता है, तथा इस प्रकार पाए गए तथ्यों में विधि को लागू करना ।

6.22 बैंक और वित्त संस्था अधिनियम, 1993 के आधार पर देय ऋण की वसूली के कारण अधिकरण और अपील अधिकरण की स्थापना का उपबंध किया गया है । इस अधिनियम की विधिमान्य को **भारत संघ** बनाम **दिल्ली अधिवक्ता संघ**[98] वाले मामले में चुनौती दी गई थी जिसमें उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि --

''यह मस्ति-क में रखना होगा कि अपील अधिकरण का विनिश्चय अंतिम नहीं होता क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा उसका न्यायिक पुनर्विलोकन किया जा सकता है । ''

6.23 **भारत संघ** बनाम **आर. गांधी**[99] वाले मामले में कंपनी अधिनियम, 1956 के अध्याय 1ख और 1ग की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती दी गई थी । इन अध्यायों के अंतर्गत रा-ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण और रा-ट्रीय कंपनी विधि (अपील) अधिकरण का गठन किया गया है । न्यायालय ने सांविधानिक विधि मान्यता को कायम रखा और यह मत व्यक्त किया --

''विधानमंडल किसी भी विनिर्दि-ट वि-नय के संबंध में (उनसे भिन्न जो संविधान के अभिव्यक्त उपबंध द्वारा न्यायालयों में निहित हैं) न्यायालयों द्वारा प्रयुक्त अधिकारिता को किसी भी अधिकरण को अंतरित करने के लिए विधि बना सकता है ।''

6.24 **राजा रामपाल** बनाम **माननीय अध्यक्ष, लोकसभा**[100] वाले मामले में पांच न्यायाधीशों की संविधान न्यायपीठ ने संसदीय उपबंधों के प्रयोग के संबंध में न्यायिक पुनर्विलोकन के प्रश्न पर विचार किया था । न्यायालय ने उसके बारे में सिद्धांतों को सारांश रूप में दिया और, अन्य बातों के साथ-साथ यह अधिकथित किया --

''अवधारण को अंतिमता प्रदान करने वाला नि-कासन खंड साधारणतया विनिश्चय का पुनर्विलोकन करने की न्यायालय की शक्ति को नि-कान्ति करता है किंतु अधिकारिता की कमी के आधार पर नहीं और इस कारण नहीं कि यह किसी कारण से अकृतता है जैसे घोर अवैधता, तर्कहीनता, सांविधानिक आज्ञा का उल्लंघन, असद्भाव, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अननुपालन और दुराग्रह ।''

6.25 **मोहम्मद अंसारी** बनाम **भारत संघ**[101] वाले मामले में, उच्च न्यायालय का वह आदेश

---

[98] ए. आई. आर. 2002 एस.सी. 1479.

[99] (2010) 11 एस.सी.सी. 1.

[100] (2007) 3 एस.सी. सी. 184.

[101] (2017) 3 एस.सी. सी. 740.

संवीक्षाधीन था जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अपीलार्थी को निःक्रिय वित्तीय उन्नयन का अनुदान न दिए जाने के मामले में अधिकरण को कोई अधिकारिता नहीं है । अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया था कि उसे अधिकारिता प्राप्त है । उच्चतम न्यायालय ने विचार किया था कि क्या सशस्त्र बल अधिकरण अधिनियम, 2007 के प्रवृत्त हो जाने के पश्चात् सशस्त्र बल अधिकरण संविवाद के बारे में कार्यवाही कर सकते हैं अथवा फिर भी संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय को अधिकारिता प्राप्त होगा । उसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सशस्त्र बल अधिकरण को जी. आर. ई.एफ. कार्मिकों के संबंध में कोर्ट मार्शल के अभिमत के विरुद्ध ही अपील सुनने की अधिकारिता होगी । किंतु यदि जी. आर. ई. एफ. कार्मिक पर दंड सी. सी. एस. (सी.सी.ए.) रूल्स 1965 के अधीन की गई विभागीय कार्यवाही में अधिरोपित किया जाता है तो उसे ए.एफ.टी. (सशस्त्र बल अधिकरण) के समक्ष नहीं ले जाया जा सकता ।

6.26 संविधान के अनुच्छेद 136(2) सपठित अनुच्छेद 227(4) के अधीन सशस्त्र बल अधिकरण को, सशस्त्र बल अधिकरण अधिनियम, 2007 की धारा 30 और 31 के फलस्वरूप उच्चतर न्यायपालिका द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन की परिधि से बाहर रखा गया है । **भारत संघ** बनाम **मेजर जनरल श्रीकांत शर्मा**[102] वाले मामले में न्यायालय ने धारा 30 और 31 का निर्वचन करते हुए यह अभिनिर्धारित किया था कि उच्च न्यायालयों को सशस्त्र बल अधिकरण अधिनियम, 2007 से उत्पन्न होने वाली कार्यवाहियों में मध्यक्षेप करने की शक्ति नहीं है । फिर भी **भारत संघ** बनाम **थामस वैद्यन एम.**[103] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय के सही होने पर संदेह किया और यह मत व्यक्त किया --

> ''इस न्यायालय की मताभिव्यक्तियों को **एल. चन्द्र कुमार** बनाम **भारत संघ** (1997) 3 एस. सी. सी. 261 वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के विपरीत, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने से उच्च न्यायालयों को विवर्जित किए जाने के रूप में पढ़ा जा रहा है ।प्रथमदृ-ट्या हमारा मत है कि **भारत संघ और अन्य** बनाम **मेजर जनरल श्रीकांत शर्मा और एक अन्य** (पूर्वोक्त) में इस न्यायालय के विनिश्चय पर पुनः विचार की जरूरत है, समुचित होगा कि इस पहलु पर तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ विचार करे । चूंकि यह प्रश्न अनेक ममालों में उठता है अतः इस मामले पर तत्काल विचार किया जाना चाहिए ।''

6.27 2007के अधिनियम की धारा 3(ण) के उपबंधों की दृ-टि से ए. एफ.टी. (सशस्त्र बल अधिकरण) को उन व्यक्तियों के संबंध में सेवा मामलों को ग्रहण करने की अधिकारिता है जो सेना अधिनियम, 1950, वायुसेना अधिनियम, 1950 और नौसेना अधिनियम, 1957 के अधीन हैं । उसे निम्नलिखित मामलों के संबंध में अधिकारिता नहीं है :–

> (i) सेना अधिनियम, 1950 (1950 का सं. 46) की धारा 18, नौसेना अधिनियम, 1957 (1957 का सं. 62) की धारा 15 की उपधारा (1) और वायुसेना अधिनियम, 1950 (1950 का सं. 45) की धारा 18 के अधीन जारी किए गए आदेश ; तथा

---

[102] (2015) 6 एस. सी. सी. 773.

[103] सिविल अपील सं. 5327/2015, आदेश तारीख 16.11.2015.

(ii) सेना अधिनियम, 1950 (1950 का सं. 46), नौसेना अधिनियम, 1957 (1957 का सं. 62) तथा वायु सेना अधिनियम, 1950 (1950 का सं. 45) के अधीन आने वाले व्यक्तियों के संबंध में, अलग-अलग या युनिट, फार्मेशन या पोत के अंशस्वरूप तैनाती पर स्थान या युनिट परिवर्तन सहित स्थानांतरण और तैनाती ;

(iii) किसी भी प्रकार की छुट्टियां ;

(iv) वहां के सिवाय जहां दंड पदच्युति का है अथवा तीन मास से अधिक के कारावास का है, संक्षिप्त कोर्ट मार्शल ।

6.28 इस प्रकार यह स्प-ट है कि संविधान के बुनियादी ढांचे के अन्य अनेक महत्वपूर्ण पहलुओं के साथ-साथ न्यायिक पुनर्विलोकन अभिन्न हैं तथा अन्य किसी प्रकार के विवाद का न्याय-निर्णयन ढंग सृजित करते समय न्यायिक पुनर्विलोकन से समझौता नहीं किया जा सकता ।

अध्याय 7

उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में अपील

7.1 अधिकरणों की स्थापना सामाजिक लक्ष्यों के उन्नयन की दिशा में उन्मुख है । इसका उद्देश्य प्रशासनिक विधि सिद्धांतों में विशे-ज्ञता के साथ आम जनता के एक बहुत बड़े भाग को सामूहिक न्याय देना है । अतः यह अनिवार्य है कि अधिकरण के विनिश्चयों के न्यायिक पुनर्विलोकन का उपबंध यह अवधारित करने के लिए हो कि क्या अधिकरण तार्किकता के न्यूनतम मानदंडों को पूरा करते हैं ।[104] भारत के विधि आयोग ने अपनी 162वीं रिपोर्ट में राज्य के हितों में और व्यक्तियों के हितों में उचित संतुलन की आवश्यकता को चिह्नित किया । यह मत व्यक्त किया गया कि न्यायालय 'प्रशासनिक विधि के विज्ञान' द्वारा अनुज्ञात सीमा तक अधिकरण की अधिकारिता में हस्तक्षेप कर सकते हैं क्योंकि प्रशासनिक विधि की सर्वोच्च चिंता नागरिकों को शासकीय शक्ति के दुरुपयोग से रक्षा प्रदान करना है ।

7.2 यह स्थिर विधिक प्रस्थापना है कि अकेले उच्चतर न्यायपालिका का काम कानूनी अधिनियमिति का अर्थ प्राधिकारपूर्वक तय करना है तथा अधिनियम के अधीन गठित किसी निकाय या अधिकरण के न्यायशास्त्र की सीमाएं अधिकथित करना है । अधिकरण को कानून के अधीन काम करना होता है जबकि उच्चतर न्यायपालिका सांविधानिक प्राधिकरण होती है जिसे विधि और संविधान के निर्वचन का काम ही नहीं सोंपा जाता बल्कि अधिकरणों के ऊपर पर्यवेक्षणीय नियंत्रण रखना भी होता है । यह स्थिति संविधान में अनुध्यात है । न्याय करने के संप्रभु कार्यों का निर्वहन करते समय भी न्यायपालिका की स्वाधीनता को अक्षुण्ण रखने के लिए न्यायालय द्वारा निर्णय सुनाए जाते हैं । अधिकरणों का सृजन करके, संसद् या राज्य विधानमंडलों द्वारा निर्मित विधि से इस स्थिति को क्षीण नहीं किया जा सकता ।

7.3 अमेरिकी और कनाडाई संविधान की तुलना में भारतीय विधिक तंत्र का न्यायपालिका पदानुक्रम सुभिन्न है । अमेरिकी संविधान विनिर्दि-ट वि-नयों के सिवाय जो अनन्य रूप से परिसंघीय सरकार के लिए अभिप्रेत हैं, राज्य को समस्त शक्तियां प्रदत्त करता है । फिर भी कनाडाई संविधान के अधीन केवल विनिर्दि-ट वि-नय और शक्तियां घटक राज्यों को दी गई हैं तथा शे-न शक्तियां परिसंघीय सरकार के पास छोड़ दी गई हैं ।

7.4 कॉमन लॉ के देशों में प्रशासनिक न्यायनिर्णयन न्यायिक पर्यवेक्षण के अधीन काम करता है । इसके विपरीत, फ्रांसीसी तंत्र है जहां **काउंसेल डू इटेट** की स्थापना की गई है । भारत में और अन्य अनेक कॉमन लॉ देशों में निर्णयों का न्यायिक पुनर्विलोकन कुछ विधिक आधारों पर अनुज्ञात किया जाता है जैसे नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों से वंचित रखना, विहित प्रक्रिया का पालन न करना, अधिकारिता का अभाव या दुरुपयोग, विधि की त्रुटि, शक्ति बाह्य विनिश्चय[105] भारतीय प्रशासनिक विधि में दूसरा नियंत्रण तंत्र अर्थात् प्रशासनिक एजेंसियों का न्यायिक पुनर्विलोकन अंगीकार किया गया है । युनाईटेड किंगडम में अधिकरण प्रणाली को दो स्तरों में विभक्त किया गया है - प्रथम स्तर अधिकरण तथा 'अपील उच्च अधिकरण' उच्च अधिकरण के विरुद्ध अपीलें, अपील न्यायालय द्वारा

---

[104] लीला कृ-ण, पी., ''रिव्युइंग डिसीजन्स आफ एडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिव्युनल पेटरन लस्टिक अप्रोच आफ द इंडियन सुप्रीम कोर्ट एंड नीड फार इंस्टीट्यूशनल रिफोर्म्स'' 54 : 1 जेआईएलआई 25 (2012).

[105] पूर्वोक्त टिप्पण 5, पृ. 525.

सुनी जाती हैं और इसके बाद अपील युनाईटेड किंग्डम के उच्चतम न्यायालय में जाती है । इस प्रणाली का प्रयोजन न्यायपालिका की स्वाधीनता की गारंटी देना है । इसीलिए अधिकरणों को प्रशासन की मशीनरी[106] के बजाए न्यायनिर्णयन की मशीनरी समझा जाता है ।

7.5 फ्रेंक्स की रिपोर्ट में न्यायालयों द्वारा सरशियरेराई कार्यवाहियों द्वारा या अपील द्वारा विधि के प्रश्न पर अधिकरण के विनिश्चयों के पुनर्विलोकन पर अधिक जोर दिया गया है । न्यायिक पुनर्विलोकन को सीमित रखना होता है अर्थात् केवल विधि के मुद्दों पर न कि तथ्यों के मुद्दों पर, सिवाय तब के जब बिल्कुल भी साक्ष्य न हो ।[107] उस रिपोर्ट में यह भी सिफारिश की गई थी कि उन मामलों के सिवाय जिनमें प्रथम बार का अधिकरण असाधारण रूप से प्रबल होता है, तथ्य, विधि और गुणता पर अपील अधिकरण में अपील का व्यापक अधिकार हो । साथ ही, विधि के मुद्दे पर न्यायालयों में अपील का अधिकार होना चाहिए ।[108]

7.6 कॉमन लॉ में[109] सीमित अधिकारिता युक्त प्रत्येक अधिकरण विभिन्न आधारों पर उच्च न्यायालय के नियंत्रण के अधीन होता है जैसे तब जब अधिकरण अपनी अधिकारिता से आगे निकल जाता है, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के प्रतिकूल काम करता है, कानूनी कर्तव्य करने में असफल रहता है, अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहता है, तथा विधि की त्रुटि करता है ।[110] अन्य अधिकारिताओं वाले उच्चतम न्यायालयों में उनके द्वारा विनिश्चित मामले थोड़े से होते हैं और सांविधानिक तथा रा-ट्रीय महत्व के होते हैं । उन अधिकारिताओं में, अधीनस्थ न्यायालय अंततः उच्चतम न्यायालयों का बोझ कम करने के लिए मामलों का विनिश्चय करते हैं । अन्य अधिकारिताओं वाले उच्चतम न्यायालय जैसे अमेरिका, इंग्लैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका में या तो पूर्ण पीठ में आसीन होता है या पांच या इससे अधिक न्यायाधीशों की न्यायपीठ में, जो मामले की महत्ता पर निर्भर करता है ।[111]

7.7 देश में सर्वोच्च न्यायालय के नाते उच्चतम न्यायालय महत्वपूर्ण मुद्दों पर कार्यवाही करने के लिए अभिप्रेत है जैसे सांविधानिक प्रश्न, व्यापक महत्व के विधि प्रश्न या जहां घोर अन्याय किया गया है । यदि उच्चतम न्यायालय हर प्रकार के मामलों को ग्रहण करने लगे तो उसमें मुकदमों की बाढ़ आ जाएगी और उसमें मामलों का अम्बार लग जाएगा जिससे मामलों में कार्यवाही करना मुश्किल हो जाएगा जिसके लिए वह वास्तव में अभिप्रेत है । आखिरकार, उच्चतम न्यायालय के पास सीमित समय होता है और उससे हर प्रकार के विवाद को सुनने की प्रत्याशा नहीं की जा सकती ।[112]

---

[106] पूर्वोक्त टिप्पण 82, पृ. 21 द कांस्टीट्यूशनल रिफार्म ऐक्ट 2005 (यू.के.) एस. 3. देखिए ।

[107] न्यायिक पुनर्विलोकन निम्न पर उपलब्ध है - http://14.139.60.114:8080/jspui/bitstream/123456789/663/8 /Judicial% 20Review.pdf अंतिमबार 15.8.17 को देखा गया ।

[108] गुप्ता, बलराम के., ''एडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिव्युनल्स एंड ज्युडीशियल रिव्यु : ए कमेंट आन फोरटी सेकंड अमेंडमेंट'' जेएसपीयूआई 419, फ्रेंक्स रिपोर्ट अधिकरणों द्वारा कार्यान्वित की गई है और जांच अधिनियम, 1958 (अब 1971 का अधिनियम) ।

[109] अधिकरण और जांच अधिनियम, 1958 (अब 1971 का अधिनियम) ।

[110] पूर्वोक्त टिप्पण 85 पृ. 420.

[111] आंध्र युजिना, टी.आर., ''रिजोर्टिंग द सुप्रीम कोर्ट्स एक्सक्लुसिवली'' जो http://www.thehindu.com/opinion/ lead/Restoring-the-Supreme-Court%E2%80%99sexclusivity/article11557294.ece. पर उपलब्ध और अंतिमबार 10.08.2017 को देखा गया ।

[112] मथाई @ जे.बी. ब. जार्ज, (2010) 4 एस. सी. सी. 358.

7.8 **एस. जी. कैमिकल और डाईज ट्रेडिंग एम्प्लोईज यूनियन** बनाम **एस. जी. कैमिकल्स एंड डाईज ट्रेडिंग लि.**[113] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था --

> आज जब इस न्यायालय के डॉकेट ज्यादा भरे हुए हैं, और प्रायः मुकदमों की बाढ़ से बंद लगने वाला है, अथवा न्यायालय में दाखिल होने वाले काम से तूफान आने वाला है, जिससे न्याय-प्रशासन की वर्तमान प्रणाली के विलुप्त हो जाने का संकट है, तो न्यायालय को अनुच्छेद 136 के अधीन अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय अत्यंत सतर्क रहना चाहिए ।

7.9 न्यायमूर्ति के. के. मैथ्यु ने न्या. फ्रेंकफर्टर की राय को अपने लेख में निर्दि-ट किया[114] और यह मत व्यक्त किया --

> ''न्यायमूर्ति फ्रेंक फर्टर के अनुसार उच्चतम न्यायालय का कर्तव्य सार्वजनिक फायदे के लिए सांविधानिक और महत्वपूर्ण विधि प्रश्नों पर पहुंचने के लिए तथा अपील के मध्यवर्ती न्यायालयों में विनिश्चय की एकरूपता अक्षुण्ण रखने के लिए विधि के सिद्धांतों को प्रतिपादित करना एवं स्थिरता प्रदान करना है ।''

7.10 श्री के. के. वेणुगोपाल ने अपने एक व्याख्यान में यह उल्लेख किया था[115] :

> ''..... इस न्यायालय में एक चिंताजनक स्थिति पैदा हो गई है क्योंकि इस न्यायालय ने स्वयं को धीरे-धीरे मात्र एक अपील न्यायालय के रूप में परिवर्तित कर लिया है जो ऐसी हर त्रुटि को ठीक कर देता है जिसे वह देश के उच्च न्यायालयों के निर्णयों में एवं अनेक अधिकरणों के निर्णयों में पाता है । यह न्यायालय स्वयं संविधान न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के रूप में अपने मूल स्वरूप से भटक गया है । यदि सर्वोच्च न्यायालय सभी प्रकार के मामलों में कार्यवाही करना चाहता है तो अवश्यमेव वह कालांतर में विशाल बकाया मामलों का संचय कर लेगा जिसे किसी भी भावी समय में निपटाना असंभव होगा । यह स्वयं घातक क्षति है जो विद्वे-न का कारण है जिससे देश के सर्वोच्च न्यायालय में पक्षकारों का भरोसा धीरे-धीरे टूट गया है । इसका मुख्य कारण यह है कि वह एक युक्तियुक्त समय में मामलों को सुनने और निपटाने में असफल रहा है । यह बड़ी दुःखद घटना है कि व-र्षों पूर्व सुनवाई के लिए सूचीबद्ध मामलों में अभी सुनवाई की जानी बाकी है ।''

7.11 कोईप्रश्न तब तक सार्वजनिक महत्व का नहीं कहा जा सकता जब तक वह पूरे राज्य में महत्वपूर्ण न हो, न कि एक अकेले भौगोलिक क्षेत्र में[116] सार्वजनिक महत्व के मामलों से ऐसे मामले अभिप्रेत हो सकते हैं जो सरकार के कार्यों के करने से या न करने से संबंधित हैं जिससे आस्था के रा-ट्र व्यापी संकट जैसी स्थिति पैदा हो जाती है ।[117] उसके अंतर्गत नगरपालिका का कचरा अंधाधुंध डालना, शोरगुल और ठोस कचरा प्रदू-ण, वन्यजीव का संरक्षण आदि भी शामिल है । एक व्यक्ति के आचरण से ऐसी खतरनाक स्थिति पैदा हो सकती है और उससे इस प्रकार प्रतिकूल रूप से लोक

---

[113] (1986) 2 एस. सी. सी. 624.

[114] न्यायालय के एक विख्यात न्यायाधीश, (1982) 3 एस. सी. सी. (जर्नल).

[115] आर. के जैन द्वारा 30.01.2010 को दिया गया स्मारक व्याख्यान ।

[116] केंटेरो, राऊल जी. ''सर्टिफाइंग क्वेश्चन्स टु द फ्लोरिडा सुप्रीम कोर्ट : ह्वाट्स सो इम्पोरटेंट ?'' एफ. बी. जे. 40 (2002).

[117] सेंगल, जीव, '' द पावर टु प्रोज इंटु मेटर्स आफ वाइटल पब्लिक इम्पोरटेंस'', 58 टी.एल.आर. 941 (1984).

कल्याण प्रभावित हो सकता है या प्रभावित होने का खतरा पैदा हो सकता है जिससे ऐसा आचरण लोक महत्व का निश्चित मामला बन सकता है ।[118] जब यह अभिकथन किया जाए कि एक मंत्री ने अपने पद की ताकत का दुरुपयोग करके अपने लिए अपने रिश्तेदारों और मित्रों के लिए अपार धन कमा लिया है, तो यह प्रश्न नहीं हो सकता कि मामला लोक महत्व का है । लोक महत्व की बात यह है कि अपने कर्तव्य में नाकाम सार्वजनिक आदमी से कहा जाए कि वह परिणाम भुगते । निश्चय ही यह जनता के के लिए महत्व की बात है कि मंत्रियों की ओर से होने वाली चूकों का भंडाफोड़ किया जाना चाहिए । सार्वजनिक जीवन में नि-कलंक रहना जिसमें लोग बहुत ज्यादा हितबद्ध होने चाहिए, सार्वजनिक महत्व का मामला होना चाहिए । लोग यह जानने के हकदार हैं कि उन्होंने अपने कार्य एक अयोग्य आदमी को सौंपे हैं अथवा नहीं ? अभिकथनों से अत्यंत सार्वजनिक महत्व के प्रश्न भलीभांति उठ सकेंगे ।[119]

7.12 उच्चतम न्यायालय अपनी अपीली अधिकारिता के माध्यम से प्रशासनिक निकायों के कामकाज का पर्यवेक्षण करता है, तथा प्रशासनिक विधि की प्रगति के लिए और भारत में विधिसम्मत शासन के उन्नयन के लिए इन निकायों के ऊपर अनुशासन अधिरोपित कर सकता है ।[120] सांविधानिक न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति और पर्यवेक्षणीय अधिकारिता प्रदत्त करने का प्रयोजन अधिकरणों को उनकी विधिक सीमाओं/प्राधिकार के भीतर रखना है ।[121] वास्तव में, अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालयों की शक्तियां पुनरीक्षण प्रकृति की हैं जबकि अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता मूल अधिकारिता के प्रयोग के रूप में समझी जाती है ।[122]

7.13 जब किसी कानून द्वारा एक अधिकरण से अपील का अधिकार न्यायालय को दिया जाता है तो साधारणतया वह विधि के मुद्दे तक सीमित रहता है किंतु विधि के प्रश्न तथ्य के प्रश्न से भिन्न होने चाहिए ।[123] विधि के निर्वचन वाले प्रत्येक प्रश्न पर जो प्राथमिक तथ्यों की स्थापना के बाद ही उत्पन्न होता है विधि के प्रश्न पर अपील उपलब्ध होनी चाहिए ।[124] अपील बाद की कार्यवाहियों की निरंतरता है और वरि-ठ न्यायालय में जाने का अधिकार है । यह मामले की पुनः सुनवाई है जबकि मामले की न्यायिक तौर पर परीक्षा की जाती है और अवर न्यायालय के विनिश्चय का पुनर्विलोकन/ पुनरीक्षण किया जाता है ।[125] उच्चतम न्यायालय आम तौर पर अधिकरण के आदेश के विरुद्ध अपील ग्रहण नहीं करता जब तक कि अपीलार्थी ने सुसंगत विधि द्वारा उपबंधित सभी

---

[118] रामकृ-ण डालमिया ब. श्री न्यायमूर्ति एस. आर. तेंदुलकर, ए. आई. आर. 1958 एस.सी., 538.

[119] जम्मू-कश्मीर राज्य बनाम बक्शी गुलाम मोहम्म, ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 122.

[120] पूर्वोक्त नोट 13, पृ. 1989.

[121] नगेन्द्र नाथ बोरा बनाम पर्वतीय खंड आयुक्त, ए.आई.आर. 1958 एस.सी. 398 ; और पंजाब राज्य बनाम नवजोत संधु (2003) 6 एस.सी.सी. 641.

[122] सूर्य देव राय बनाम राम चन्दर राय, ए. आई. आर. 2003 एस.सी. 3044.

[123] पूर्वोक्त नोट 4, पृ. 794.

[124] वी, पृ. 795.

[125] नागेन्द्र नाथ डे बनाम सुरेश चंद्र डे, ए.आई.आर. 1932 सी. सी. 165, केरल राज्य बनाम के. एम. चारिया अन्दुल्ला, ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 1585 ; लक्ष्मीरतन इंजीनियरिंग वर्क्स बनाम सहायक आयुक्त, ए. आई.आर. 1968 एस. सी. 488; शंकर रामच्नद्र अभ्यंकर बनाम कृ-ण जी दत्रात्रेय बापत, ए. आई. आर. 1970. एस. सी. 1, अमरजीत कौर बनाम प्रीतम सिंह, ए.आई.आर. 1974 एस. सी. 2068(5) ; हसमत राय बनाम रघुनाथ प्रसाद, ए. आई.आर. 1981 एस. सी. 1711, रमण कुट्टी गुप्तन बनाम अवरा, ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1699 ; तथा तिरुपति बाला जी डवलेपर्स (पी.) लि. बनाम बिहार राज्य, (2004) 5 एस. सी. सी. 1.

आनुकल्पिक उपचार इस्तेमाल न कर लिए हों ।[126]

7.14 अपील का अधिकार न्यायशास्त्र केप्रमुख सिद्धांत के रूप में जीवन और स्वातंत्र्य अधिकार के प्रभावी रूप से इस्तेमाल करने की सार्वभौमिक अपेक्षा के रूप में समझा जाता है । यह पदानुक्रम में न्यायालयों के स्थापन की आधारशिला में होता है । आदमी से गलती हो जाती है, इसी प्रकार न्यायाधीश भी गलती कर देते है और निर्णय पारित करते समय कोई भूल हो जाती है जिसे सही करना अपेक्षित होता है । उसके आधार पर मुकदमे के पक्षकार को अपील में जाने का अधिकार होना चाहिए । **सीता राम** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[127] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस मुद्दे पर विस्तारपूर्वक विचार किया था । उस निर्णय में यह मत व्यक्त किया गया था :–

> ''अपील का अकेला अधिकार इस संकल्पना में निहित जीवन और स्वातंत्र्य की गारंटी की कमोवेश सार्वभौमिक अपेक्षा है कि मनु-य से गलती होती है, कि न्यायाधीश भी आदमी होते हैं और यह कि आश्वासन को दोगुना पक्का करना, - तथ्यों एवं विधि की समग्र पुनर्परीक्षा अभिन्न अंग या मूलभूत नि-पक्षता या प्रक्रिया बनाई गई है ।
>
> .....
>
> जहां वि-नय-वस्तु कम महत्वपूर्ण होती है, जहां दो न्यायालय समुचित मामले में पहले ही साक्ष्य का आकलन कर चुके होते हैं और सकारण विनिश्चय दे चुके होते हैं, जहां तथ्यात्मकता और मानवतावाद विधिसम्मत हैं, वहां कारण बताए बिना तीसरे स्तर पर निर्णय पारित करना, जहां नि-क-र्ं सकारात्मक होता है । नैसर्गिक न्याय को किसी अनम्य सांचे में नहीं डाला जा सकता तथा मूलभूत नि-पक्षता परिस्थितियों में अनुत्तरदायी नहीं होती ।''

7.15 उच्चतम न्यायालय ने **संजीव दत्ता, उपसचिव, सूचना और प्रसारण मंत्रालय**[128] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया था --

> ''कोई भी गलतियों से मुक्त नहीं होता और न्यायपालिका भी न्यूनता मुक्त होने का दावा नहीं कर सकती । सच ही कहा गया है कि ऐसा कोई न्यायाधीश पैदा नहीं हुआ जिसने कोई गलती न की हो । वस्तुतः हमारी विधिक प्रणाली न्यायालयों की गलतियों को स्वीकार करती है तथा गलतियों पर काबू रखने के लिए आंतरिक और वाह्य दोनों नियंत्रण रखती है । विधि, न्यायशास्त्र और पूर्वोदाहरण, खुली सार्वजनिक सुनवाइयां, सकारण निर्णय, अपीलें, पुनरीक्षण, निर्देश और पुनर्विलोकन आंतरिक नियंत्रण के अंग हैं जबकि वस्तुपरक आलोचना तथा न्यायालयों के बाहर निर्णयों पर वाद-विवाद और चर्चा एवं विधायी संशोधन वाह्य नियंत्रण का काम करते हैं । एक साथ मिलकर ये दोनों पक्ष न्यायिक जवाबदेह ही सुनिश्चित करते हैं । इस प्रकार विधि न्यायिक गलतियों को सुधारने की प्रक्रिया का उपबंध करती है । दुरुपयोग अभिप्रेरणा का आरोपण, निंदापरक आतंकवाद तथा अवज्ञा न्यायालयों की गलतियों को ठीक करने की कोई पद्धतियां नहीं हैं ।''

---

[126] जैन, एम.पी., इंडियन कांस्टीट्यूशनल लॉ लेक्सिस नेक्सिस बटरवथर्स वाधवा नागपुर 2010, पृ. 264.

[127] ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 745.

[128] (1995) 3 एस.सी.सी. 619 ; पश्चिम बंगाल राज्य बनाम शिवानंद पाठक, ए. आई.आर. 1998 एस. सी. 2050.

7.16 इसी दृ-टिकोण से **होटल बालाजी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[129] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था --

> "..... किसी त्रुटि को स्थायित्व प्रदान करना कोई बहादुरी की बात नहीं है । इसे ठीक करना न्यायिक अंतःचेतना की मजबूरी है ।"

7.17 **नागेन्द्र नाथ डे** बनाम **सुरेश चंद्र डे**[130] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल की जांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया था कि, अपील न्यायालय में अपील पक्षकार द्वारा एक आवेदन होता है जिसके द्वारा अधीनस्थ न्यायालय के विनिश्चय को अपास्त करने या पुनरीक्षित करने के लिए कहा जाता है । इसी प्रकार, **चप्पन** बनाम **मोईदीन कुट्टी**[131] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित किया था कि अपील पुनः विवेचन या पुनर्विलोकन के लिए अवर न्यायालय के विरुद्ध वरि-ठ न्यायाधीश या न्यायालय में मुकदमा या वाद को ले जाना है । ह्वार्टनस लॉ लैक्सिकन के अनुसार ऐसा मुकदमा या वाद आगे ले जाना अवर न्यायालय के विनिश्चय के औचित्य को परखने के प्रयोजन के लिए होता है । अपील के अर्थ विशे-ा के अनुरूप अपील अधिकारिता से अवर न्यायालय के विनिश्चय का पुनर्विलोकन करने की वरि-ठ न्यायालय की शक्ति अभिप्रेत हैं ।[132]

7.18 कानून के अधीन सृजित अधिकरण ऐसी विधि की सांविधानिक विधिमान्यता की परीक्षा करने के लिए सशक्त नहीं है जिसके अधीन वह सृजित किया गया है, क्योंकि यह कार्य उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय को सौंपा गया है । ऐसे वि-ाय पर जो अन्यथा राज्य विधानमंडल के अधिकार क्षेत्र में आता है, विधि बनाने की शक्ति के बारे में राज्य और संसद् में मतभेद होने की स्थिति में उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय ही ऐसी विधि की विधिमान्यता के प्रश्न पर विचार कर सकते हैं ।

7.19 **तमिलनाडु राज्य** बनाम **कर्नाटक राज्य**[133] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अधिकरण की अधिकारिता के मानदंडों का विनिश्चय करने की अधिकारिता उसके पास है जो संविधान या कानून के निर्वचन पर निर्भर करती है क्योंकि अधिकरण के विनिश्चयों की गुणता पर निर्णय करने की न्यायालयों की शक्ति अपवर्जित है ।

7.20 **बरयाम सिंह** बनाम **अमरनाथ**[134] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय की अधीक्षण की शक्ति न केवल प्रशासनिक अधीक्षण तक सीमित है अपितु, उसकी परिधि में न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति भी शामिल है। उच्च न्यायालय अधिकरण से अभिलेख मंगवा सकता है और विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग रोकने के लिए परिवाद को अभिखंडित भी कर सकता है ताकि यह सुनिश्चित हो कि न्याय प्रशासन स्वच्छ

---

[129] ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 1048.

[130] ए. आई. आर. 1932 पी. सी. 165.

[131] (1899) 22 आई. एल. आर. मद्रास 68.

[132] कमेंटरीज ऑन द कांस्टीट्यूशन ऑफ यूनाइटेड स्टेट्स, धारा 1761.

[133] (1991) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 240.

[134] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 215.

और शुद्ध रहे ।[135] **शालिनी श्याम शेट्टी** बनाम **राजेन्द्र शंकर पाटिल**[136] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता की परिधि की व्याख्या की और यह मत व्यक्त किया कि उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालयों और अधिकरणों को उनके 'प्राधिकार की सीमाओं में' रखने के लिए हस्तक्षेप कर सकता है । यह सुनिश्चित करने की खातिर कि ऐसे अधिकरणों और न्यायालयों द्वारा उस अधिकारिता का प्रयोग करके जो उनमें निहित है विधि का अनुसरण किया जाए न कि उनमें निहित अधिकारिता का प्रयोग करने से इनकार करके । इस अनुच्छेद का मुख्य उद्देश्य अपने राजक्षेत्र के भीतर न्याय प्रशासन पर उच्च न्यायालय द्वारा सख्त प्रशासनिक और न्यायिक नियंत्रण रखना है । प्रशासनिक और न्यायिक दोनों प्रकार के अधीक्षण का उद्देश्य दक्षता कायम रखना, न्याय की संपूर्ण मशीनरी का सुचारू और व्यवस्थित तरीके से ऐसे ढंग से काम करना है ताकि उसकी बदनामी न हो ।

7.21 अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध सरशियोरेराई रिट जारी नहीं होती क्योंकि उसमें अधिकरण के अस्तित्व या अनस्तित्व ; विनिश्चय की वैधता या अवैधता तथा विधि की प्रकट त्रुटि अथवा अपनी अधिकारिता की शक्ति का प्रयोग करते हुए अभिलेख पर प्रकट किसी त्रुटि के बारे में[137] मामले के गुणागुण पर विचार करना होता है ।

7.22 जहां अपील फाइल करने का कानूनी अधिकार उपबंधित किया गया है वहां उच्च न्यायालय अनुच्छेद 227 के अधीन याचिका ग्रहण नहीं करता जिन मामलों में अपील का उपबंध नहीं किया गया है वहां व्यथित व्यक्ति को उपलब्ध उपचार सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण फाइल करना है किंतु जहां उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण फाइल अभिव्यक्त रूप से वर्जित है वहां संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन याचिका फाइल हो सकती है ।[138]

7.23 अपील वि-नयक कानूनी उपबंधों की भिन्न-भिन्न प्रकृति का त्वरित आकलन सुकर बनाने के लिए विभिन्न मंचों में अधिकरणों के मामलों पर आयोग द्वारा विवेचन किया गया है और तदनुसार उपाबंध ।।। में उन अधिकरणों का ब्यौरा दिया है जिसके विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय में की जाती है और उपाबंध IV में उन अधिकरणों का ब्यौरे दिया गया है जिनके विरुद्ध अपीलें उच्चतम न्यायालय में होती हैं ।

7.24 **टी. के. रंगराजन** बनाम **तमिलनाडु सरकार**[139] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने तमिलनाडु राज्य के ऐसे पुलिस कार्मिक के मामले पर विचार किया था जो हड़ताल पर गया हुआ था और तमिलनाडु राज्य ने एक अधीनस्थ विधान लाने के पश्चात् उनकी सेवाएं समाप्त कर दी थीं । राज्य के पुलिस कार्मिक उच्च न्यायालय में गए और अपने सेवा पर्यवसान के आदेश को चुनौती दी और तब मुद्दा उठा कि क्या उक्त याचिका तब चलने योग्य है जब प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष उपचार उपलब्ध है । उच्चतम न्यायालय ने एल. चन्द्रशेखर वाले मामले में वृहत्तर न्यायपीठ

---

[135] पेप्सी फूड लि. बनाम विशे-न न्यायिक मजिस्ट्रेट, ए.आई.आर. 1998 एस.सी. 128.

[136] (2010) 8 एस. सी. सी. 329 ; गिरीश कुमार सुनेजा बनाम केंद्रीय अन्वे-ण ब्यूरो 2017(5) सुप्रीम 466 को भी देखिए ।

[137] पूर्वोक्त नोट 5, पृ. 537.

[138] नगेन्द्र नाथ बनाम कमीशन आफ हिल्स डिवीजन, ए.आई.आर. 1958 एस.सी. 398.

[139] ए. आई.आर. 2003 एस. सी. 3032.

द्वारा अधिकथित विधि से सहमति व्यक्त की, किंतु मामले के विशे-ा तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए इस नि-कर्-ा पर पहुंचा कि अधिकरण के समक्ष उपचार उतना प्रभावकारी नहीं हो सकता, और यह मत व्यक्त किया--

> ''बहराल, इस प्रकार के मामले में, यदि हजारों कर्मचारियों से कहा जाए कि वे प्रशासनिक अधिकरण के पास जाएं तो अधिकरण उस मुकदमे में न्याय करने की स्थिति में नहीं होगा । इस प्रकार, जैसाकि इससे पहले कहा जा चुका है, अत्यंत आपवादिक परिस्थिति में जो वर्तमान मामले में उत्पन्न हुई थीं, कानून के अधीन उपबंधित आनुकल्पिक उपचार के आधार पर याचिका ग्रहण न करने के लिए उच्च न्यायालय के पास कोई औचित्यपूर्ण कारण नहीं था ।''

7.25 उच्चतम न्यायालय ने भी मलिमथ कमेटी रिपोर्ट (1989) को ध्यान में रखा । उसमें यह मत व्यक्त किया गया है --

> ''अधिकरणों का कार्यकरण,
>
> 8.63 देश में अनेक अधिकरण काम कर रहे हैं । किंतु उन सब ने लोगों के मन में आस्था प्रेरित नहीं की है । इसके कारण ढूंढना दूर की बात नहीं है । सर्वोपरि कारण है क्षमता, वस्तुपरकता और न्यायिक दृ-टिकोण का अभाव । अगला कारण है उनका गठन, शक्ति उनके कार्मिकों की नियुक्ति की पद्धति, अंदरुनी प्रास्थिति और काम करने की उदासीन पद्धति । अंतिम है उनकी वास्तविक रचना ; योग्य व्यक्ति, कार्यकाल की अनिश्चितता, सेवा की असंतो-ाजनक शर्तें, प्रशासन के मामले में कार्यपालिका की अधीनस्थता, न्यायिक कामकाज में राजनीतिक हस्तक्षेप । इन कारणों और अन्य कारणों की वजह से न्याय की गुणवत्ता को क्षति हुई बताई जाती है तथा ऐसे अधिकरणों के स्थापन द्वारा मामले में शीघ्रता का कारण सिद्ध हुआ नहीं पाया जाता ।
>
> 8.64 प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के अधीन प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना का प्रयोग भी व्यापक स्वागत योग्य नहीं बन पाया है । इसके सदस्य सभी प्रकार की सेवाओं से चयनित किए गए हैं जिसमें भारतीय पुलिस सेवा भी शामिल है । राज्य प्रशासनिक अधिकरण का विनिश्चय संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन के सिवाए अपील योग्य नहीं है । मंच के भारी खर्च और अस्प-टता के कारण अपील का अधिकार वास्तव में नकारा जाता है । अनेक मामलों में न्याय की वंचना हुई है और परिणामस्वरूप असंतो-ा सामने आया है । राज्यों की ध्वनि में एक गति प्रतीत होती है जहां उनकी स्थापना उनकी समाप्ति के लिए की गई है।

7.26 अनुच्छेद 136 में प्रयुक्त अधिकरण शब्द इस तथ्य की दृ-टि से और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है कि उच्चतम न्यायालय भारत राज्यक्षेत्र में न्यायालय या अधिकरण के विनिश्चयों के विरुद्ध अपील करने की विशे-ा इजाजत दे सकता है । फिर भी 'अधिकरण' शब्द का प्रयोग 'न्यायालय' के प्रतिकूल भिन्न रूप में किया गया है ।[140] अनुच्छेद 136 के फलस्वरूप उच्चतम न्यायालय अपील का अंतिम न्यायालय होने के नाते उनके विनिश्चयों और निर्णयों के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई करके न्यायनिर्णयन निकायों को नियंत्रित कर सकता है । अधिकरणों द्वारा विनिश्चित

---

[140] पूर्वोक्त नोट 103, पृ. 256.

मामलों पर इस अधिकारिता को उच्चतम न्यायालय में निहित करने का सार इस संभावना में निहित है कि अधिकरण मनमाने निकाय के रूप में भ्र-ट हो जाएंगे ।[141]

7.27 यदि राज्य के न्यायिक कार्यों का कोई भी भाग अधिकरण में निहित नहीं किया जाता है, बल्कि वह केवल प्रशासनिक या कार्यपालक काम करता है तो वह अनुच्छेद 136 की परिधि से बाहर हो जाएगा ।[142] **देव सिंह** बनाम **रजिस्ट्रार पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय**[143] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुच्छेद 136 में प्रयुक्त 'अधिकरण' पद का वही अर्थ नहीं है जो 'न्यायालय' का है, अपितु इसकी परिधि में वे सब न्याय निर्णयन निकाय समावि-ट हैं बशर्ते कि वे राज्य द्वारा गठित किए गए हों और उनमें विशुद्ध प्रशासनिक या कार्यपालिक कार्यों से भिन्न न्यायिक कार्य निहित किए गए हों । अनुच्छेद 136 एक अवशि-ट उपबंध है जो उच्चतम न्यायालय को भारत में किसी भी न्यायालय या अधिकरण के निर्णय या आदेश में हस्तक्षेप अपने विवेकानुसार करने में समर्थ बनाता है ।[144]

7.28 संविधान के अनुच्छेद 136 में उपबंधित है कि उच्चतम न्यायालय अपने विवेकानुसार, भारत राज्यक्षेत्र में किसी भी न्यायालय द्वारा पारित किसी मुकदमे या मामले में पारित या किए गए किसी निर्णय, डिक्री, दंडादेश या आदेश के विरुद्ध अपील करने की विशे-ा इजाजत दे सकेगा । वह प्रकृति से साम्यिक है । अनुच्छेद 136 किसी भी पक्षकार को अपील का अधिकार प्रदत्त नहीं करता बल्कि यह उच्चतम न्यायालय को किसी भी उपयुक्त मामले में हस्तक्षेप करने की वैवेकिक शक्ति प्रदत्त करता है । अनुच्छेद 136 के विधायी आशय को हमारे न्यायशास्त्र में पूर्वोदाहरणों द्वारा सुस्थापित न्यायिक सिद्धांत का पालन करके लागू किया जाता है । इस प्रकार इसका आशय सुधारात्मक अधिकारिता होना है जो उच्चतम न्यायालय में विधि को स्प-ट रूप से स्थिर करने का विवेकाधिकार निहित करती है । अनुच्छेद 136 सर्वोपरि खंड से प्रारंभ होता है और इस प्रकार इसका अध्यारोही प्रभाव है । यह अवशि-ट शक्तियां प्रदत्त करता है जो किसी भी कानून का संविधान के भाग V के अध्याय IV के अन्य उपबंधों द्वारा असीम हैं ।[145] अनुच्छेद 136 के अधीन वैवेकिक शक्ति का प्रयोग कभी-कभार करना चाहिए, 'न्यायालय, सामान्यतः साक्ष्य का मूल्यांकन नहीं करता और साक्षियों की विश्वसनीयता के प्रश्न पर विचार नहीं करता ।[146] फिर भी इस शक्ति का प्रयोग प्रकट अन्याय के मामलों में अथवा जहां प्रकट अन्याय से और उन नि-क-र्षों से बचने के लिए जो दुराग्रही हैं, साक्ष्यों को पढ़ने में अवैधता या भ्रांति या भूल से अथवा तात्विक साक्ष्य[147] की अवहेलना, अपवर्जन या अवैध रूप से ग्रहण करने से घोर अन्याय[148] हुआ है, वहां

---

[141] वही, पृ. 257.

[142] जसवंत शुगर मिल्स लि. बनाम लक्ष्मी चंद, ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 677.

[143] ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 1629.

[144] एन. सूर्याकला बनाम वी. मोहन दास (2007) 9 एस.सी. सी. 196.

[145] पंजाब राज्य ब. रफीक मसीह, ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 696 ; और एन. ए. एल. ले आउट रेजिडेंट्स एसोसिएशन ब. बंगलुरु डिवलपमेंट अथारिटी और अन्य, 2017 (6) सुप्री 331.

[146] अलामेलु ब. राज्य, ए.आई. आर. 2011 एस. सी. 715.

[147] महा प्रबंधक, टेलिफोन्स, अहमदाबाद ब. बी. जी. देसाई, ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 2062 तथा मोहम्मद खलील चिश्ती ब. राजस्थान राज्य, (2013) 2 एस. सी.सी. 541.

[148] श्याम सुंदर ब. पूरन, ए. आई. आर. 1991 एस. सी. 8.

हस्तक्षेप करने के लिए किया जा सकता है ।[149] **यू. श्री.** ब. **यू. श्रीनिवास**[150] में न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि यदि नि-क-र्ा दुराग्रहपूर्ण तार्किकता पर आधारित नहीं है या तात्विक साक्ष्य की अज्ञानता में लेखबद्ध नहीं है अथवा संबंधित सामग्री का अपवर्जन करके नहीं दिया गया है तो संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन वैवेकिक शक्ति का प्रयोग सामान्यतया तब तक नहीं किया जाता जब तक न्याय की मांग हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं करती है[151] अथवा जब उच्च न्यायालय ने वह मत अपनाया है जो युक्तियुक्त रूप से संभव नहीं है[152] अथवा जब शक्ति का प्रयोग निरर्थक होना संभाव्य है ।[153] तथ्य के समवर्ती नि-क-र्ा होने पर हस्तक्षेप के किसी विधिमान्य आधार के बिना अनुच्छेद 136 के अधीन अपील में हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है ।[154] इसके आलवा दांडिक मामलों में सेशन न्यायालय[155] द्वारा पारित दो-नसिद्धि के आदेश को उलटने में जब उच्च न्यायालय स्वयं गुमराह हो गया है तो उच्चतम न्यायालय का हस्तक्षेप करना न्यायोचित होगा । हस्तक्षेप ऐसे मामले में अनुज्ञेय है जिसमें प्रश्न संविधान के निर्वचन का या राज्य की सांविधानिक विधिमान्यता का हो या केंद्रीय विधान का हो अथवा जहां त्रुटि इतनी घातक हो कि कोई भी युक्तिवान व्यक्ति समर्थन न करे[156] अथवा जहां निचले न्यायालय का नि-क-र्ा ऐसा है कि अंतः चेतना भी हिल जाए ।[157]

7.29 उच्चतम न्यायालय ने **धाकेश्वरी कॉटन मिल्स** ब. **आयकर आयुक्त, पश्चिमी बंगाल राज्य**[158] वाले मामले में संविधान के अनुच्छेद 136 की व्याप्ति की व्याख्या की और यह मत व्यक्त किया कि :–

> ''अनुच्छेद 136 में किए गए सांविधानिक उपबंध द्वारा न्यायालय में निहित वैवेकिक अधिकारिता के प्रयोग पर प्रतिबंधों को किसी भी निश्चितता के साथ परिभा-नित करना संभव नहीं है । जो भी प्रतिबंध है, वे स्वयं शक्ति की प्रकृति और स्वरूप में विवक्षित हैं । चूंकि यह आपवादिक और अध्यारोही शक्ति है इसलिए स्वभावतः इसका प्रयोग कभी-कभार और चेतावनी के साथ तथा विशे-न और असाधारण स्थितियों में ही करना होगा ..... फिर भी यह बात स्प-ट है कि जब न्यायालय इस नि-क-र्ा पर पहुंचे कि किसी व्यक्ति के साथ मनमाना व्यवहार किया गया है और भारत राज्य क्षेत्र में न्यायालय या अधिकरण ने कक्षीकार के साथ उचित व्यवहार नहीं किया है तो किसी भी प्रकार की तकनीकी अड़चन जैसे तथ्यों के नि-क-र्ा की अंतिमता या अन्यथा इस शक्ति के प्रयोग के मार्ग में बाधक नहीं बन सकती क्योंकि इस

---

[149] राधा मोहन सिंह उर्फ लाल साहब ब. उत्तर प्रदेश राज्य, ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 951.

[150] (2013) 2 एस. सी. सी. 1585, अजय अर्जुन सिंह ब. शारदेन्दु तिवारी, ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 1417 और वी.सी.सी.आई. ब. क्रिकेट एसोसिएशन आफ बिहार,ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 3194 भी देखिए ।

[151] सीमेंस लि. ब. सीमेन्स कर्मचारी संघ ए. आई. आर. 2010 एस.सी. 175.

[152] मनोज एच. मिश्रा ब. भारत संघ (2013) 6 एस. सी. सी. 313.

[153] राजाराम प्रसाद यादव ब. बिहार राज्य (2013) 4 एस. सी. सी. 461 ; और भारत पैट्रोलियम कारपोरेशन लि. ब. आर. सी. वैध (2014) 2 एस.सी.सी. 657.

[154] जनक दुलारी देवी ब. कपिल देव राय, ए.आई.आर. 2011 एस.सी. 2521.

[155] गौरी शंकर शर्मा ब. उत्तर प्रदेश राज्य, ए. आई. आर. 1990. एस. सी. 709.

[156] वी. वसंत कुमार ब. एच. सी. आदिया (2016) 7 एस. सी. सी. 687.

[157] महेश चंदर ब. दिल्ली राज्य, ए.आई.आर. 1991 एस.सी. 1108.

[158] ए. आई. आर. 1955 एस.सी. 65.

अनुच्छेद का संपूर्ण आशय और प्रयोजन यह है कि न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह यह देखे कि अन्याय न होने पाए अथवा न्यायालयों और अधिकरणों के विनिश्चयों से अन्याय स्थिर न बन जाए क्योंकि कुछ विधियों ने इन न्यायालयों या अधिकरणों के विनिश्चयों को अंतिम और निश्चायक बना दिया है ।''

7.30 संविधान के अनुच्छेद 262 के अधीन अधिनियमित - अंतरराज्यीय जल विवाद अधिनियम, 1956 के उपबंधों का निर्वचन करते हुए उच्चतम न्यायालय ने **कर्नाटक राज्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[159] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि न तो धारा 11, जो अधिकरण को निर्देशित जल विवाद की बाबत उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता को अपवर्जित करती है और 1956 के अधिनियम की धारा 6, जो यह उपबंध करती है कि अधिकरण का अधिनिर्णय उच्चतम न्यायालय की डिक्री माना जाएगा और उसी रुप में नि-पादित किया जाएगा, उच्चतम न्यायालय को जल विवाद से संबंधित मुद्दों पर विचार करने की अधिकारिता से वंचित करती है । यह अधिनियम आरंभिक/शुरू के स्तर पर परिवाद/व्यथा की सुनवाई को प्रवारित करता है ।

[159] (2017) 3 एस. सी. सी. 362; नाबम रबिया एंड बामग फेलिक्स ब. उपाध्यक्ष, अरुणाचल प्रदेश विधान सभा, (2016) 8 एस. सी.सी. 1 को भी देखिए ।

अध्याय 8

उच्च न्यायालयों की अधिकारिता से बाहर उपचार

8.1 न्याय पाना नागरिकों का मूल अधिकार है जैसाकि इसमें इसके पश्चात् चर्चा और व्याख्या की गई है । प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या उच्च न्यायालयों की अधिकारिता को छोड़ बाहर-बाहर निकलने से न्याय पाने के अधिकार का या परिसंघवाद के सिद्धांत का उल्लंघन होता है जो संविधान का बुनियादी तत्व है । संविधान निर्माताओं ने न्यायिक पदानुक्रम में भी परिसंघीय संरचना को अपनाना उचित समझा था । जबकि उच्चतम न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायालय है उच्च न्यायालय राज्यों में सर्वोच्च न्यायालय हैं । सांविधानिक स्कीम में, उच्च न्यायालय विशुद्ध अर्थ में उच्चतम न्यायालय के अधीनस्थ नहीं है । उन्हें विस्तृत सांविधानिक उत्तरदायित्वों के साथ विशाल सांविधानिक भूमिका सोंपी गई है । रिट जारी करने की उनकी शक्ति उच्चतम न्यायालय की शक्ति से बड़ी है । इसके अलावा, न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति भी उनमें निहित है ।

8.2 किसी भी विधायी अधिनियम की सांविधानिक विधिमान्यता को परखने का उच्च न्यायालयों का प्राथमिक प्राधिकार विभिन्न निर्णयों में भलीभांति अभिस्वीकार किया गया है । कोई भी आम आदमी केंद्र या राज्य के किसी भी विधान को इस आधार पर चुनौती देने के लिए उच्च न्यायालय जा सकता है कि वह मनमाना, बेतुका, अयुक्तियुक्त है अथवा मूल अधिकारों का या अन्यथा अतिक्रमण करता है और इसीलिए वह अवैध घोनित किया जाना चाहिए ।

8.3 बहुत बड़ी संख्या में मामले फाइल होने से अधीनस्थ न्यायालयों और उच्च न्यायालयों में असंख्य मामले लंबित हैं जिनसे जनसाधारण के मन में यह धारणा बन गई है कि न्यायालय की कार्यवाहियों में लंबा समय लगता है और खर्चा बहुत आता है ; उच्च न्यायालय के स्तर पर तो और भी अधिक, जबकि अधिकरण विवादों का निपटारा तेजी से करते हैं और खर्चा भी कम आता है जिससे अधिकरणों की स्थापना के लिए अनुकूल वातावरण बनता है । इससे संविधान का संशोधन हुआ और अनुच्छेद 323क और 323ख जोड़े गए जिनके द्वारा संसद/और/या राज्य द्वारा अधिकरणों की स्थापना के लिए उपबंध किया गया ।

8.4 केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना संविधान के अनुच्छेद 323क (2)(घ) के अधीन की जाती है । अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय की शक्ति के सिवाय उच्च न्यायालय की अधीक्षण की शक्ति समेत सभी न्यायालयों की अधिकारिता अपवर्जित है । **गुजरात स्टील ट्यूब्स लि.** बनाम **गुजरात स्टील मजदूर सभा**[160] वाले मामले में, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता सीमित है और यह अभिनिर्धारित किया था कि न्यायिक या न्यायिककल्प अधिकरण या प्रशासनिक निकाय न्यायिक कल्प शक्तियों का प्रयोग प्रमुख बंधनों या वैधता के अंतर्गत करना होता है और यह देखना होता है कि वे अपनी कानूनी अधिकारिता का अतिलंघन न करें और उस कानून द्वारा अधिकथित विधि का सही प्रशासन करें जिसके अधीन वे काम करते हैं । जब तक कानून द्वारा सृजित सभी अधिकारी और अपील प्राधिकारी अपनी सीमा के भीतर काम करते हैं तब तक वह रीति जिसमें वे ऐसा करते हैं हस्तक्षेप का आधार नहीं हो सकती ।

---

[160] ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 1896.

8.5 **एस. एम. पटनायक** बनाम **सचिव, भारत सरकार**[161] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि भर्ती या सेवा शर्तों के संबंध में सेवा मामलों से संबंधित सब वाद और परिवाद प्रशासनिक अधिकरणों की परिधि में आते हैं तथा उच्च न्यायालय की अधिकारिता इन मामलों की बाबत अधिनियम, 1985 की धारा 28 के फलस्वरूप अपवर्जित है ।

8.6 **जे. बी. चोपड़ा** बनाम **भारत संघ**[162] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि चूंकि प्रशासनिक अधिकरण उच्च न्यायालय के प्रतिस्थानी हैं उनके पास सेवा मामलों से संबंधित संविवादों का न्यायनिर्णयन करने की आवश्यक अधिकारिता, शक्ति और प्राधिकार है तथा संविधान के अनुच्छेद 14 और 16(.) के अतिवर्तनकारी होने के कारण ऐसी विधियों की सांविधानिक विधिमान्यता या अन्यथा से संबंधित सब प्रश्नों पर विचार करने की शक्ति भी इसमें शामिल है । **एच. एन. पेट्रो** बनाम **सूचना और प्रसारण मंत्रालय**[163] वाले मामले में यह दोहराया गया था कि प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 में अंतर्वि-ट उपबंध उच्च न्यायालय की अधिकारिता को वर्जित करते हैं और उच्च न्यायालय को सावधानीपूर्वक अपना समाधान करना चाहिए कि उसे इस वि-नय पर कार्यवाही करने की तथा अधिकरण के निदेश को अकृत करने वाला आदेश पारित करने की अधिकारिता है ।

8.7 प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 द्वारा उच्च न्यायालयों की अधिकारिता अपवर्जित कर दी गई । उसके द्वारा उच्च न्यायालयों की अपीली एवं पर्यवेक्षणीय अधिकारिता समाप्त कर दी गई और सीधे उच्चतम न्यायालय में अपील करने के लिए उपबंध कर दिया गया । **एस. पी. सम्पत कुमार** (पूर्वोक्त) वाले मामले में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अधिकरण उच्च न्यायालय के वास्तविक प्रतिस्थानी होने चाहिए, न केवल प्ररूप में और विधितः, अपितु वस्तुतः और तथ्यतः, जैसाकि मिनर्वा मिल्स वाले मामले में उल्लेख किया गया था, आनुकल्पिक व्यवस्था प्रभावी एवं दक्ष होनी है एवं सांविधानिक प्रतिबंधों को अक्षुण्ण रखना है ..... तथा वह हर प्रकार से उच्च न्यायालय का योग्य उत्तरवर्ती होगा ।' न्यायालय ने **सम्पत कुमार** वाले मामले का विनिश्चय करते समय **मिनर्वा मिल्स** वाले मामले के विनिश्चय का अवलंब लिया था जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था--

> "..... संविधान का संशोधन करना संसद् की क्षमता के भीतर होगा ताकि उच्च न्यायालय के स्थान पर एक अन्य आनुकल्पिक संस्थागत तंत्र या न्यायिक पुनर्विलोकन की व्यवस्था रखी जाए बशर्ते कि वह उच्च न्यायालय से कम प्रभावकारी न हो । तब, उच्च न्यायालय के बजाए एक अन्य संस्थागत तंत्र या प्राधिकरण होगा जो न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करेगा जिससे सांविधानिक परिसीमाओं को प्रवर्तित किया जा सके और विधि सम्मत शासन को कायम रखा जा सके ।"

8.8 उच्चतम न्यायालय ने प्रभावकारी आनुकल्पिक तंत्र की विचारधारा लागू की और अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि न्यायिक पुनर्विलोकन संविधान का बुनियादी तत्व है, फिर भी उच्च न्यायालय से लेने के बाद एक आनुकल्पिक संस्थागत तंत्र में न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का

---

[161] आई. एल. आर. 1986 के. ए. आर. 3954.

[162] ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 357.

[163] (1993) 1 एस. सी. सी. (सुप्रा.) 550.

निहतन तब तक बुनियादी ढांचे पर प्रहार नहीं करेगा जब तक यह सुनिश्चित रहे कि आनुकल्पिक तंत्र उच्च न्यायालय के स्थान पर एक प्रभावी एवं वास्तविक प्रतिस्थानी है ।

8.9 अपनी अधिकारिता के भीतर समस्त न्यायालयों और अधिकरणों पर अधीक्षण की उच्च न्यायालय की शक्ति संविधान के अनुच्छेद 227 से निःसृत होती हैं । भाग 3 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए तथा अन्य किसी भी प्रयोजन के लिए परमाधिकार रिट जारी करने के लिए उच्च न्यायालयों को प्रदत्त शक्ति इतनी व्यापक है कि इसमें मूल अधिकार ही प्रवर्तित नहीं होते अपितु, विधिक अधिकार भी प्रवर्तित होते हैं । अधीक्षण की शक्ति से युक्त उच्च न्यायालयों की इस शक्ति को अनुच्छेद 226(4) में परिभाषित किया गया है जो ऐसे ही रिट जारी करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 32(2) के अधीन प्रदत्त शक्ति की अल्पीकारक नहीं है तथा उक्त उपबंध के समानांतर चलती है ।

8.10 परमाधिकार रिट जारी करने की शक्ति अनन्य है और यह किसी अधिकरण को प्रदत्त नहीं की जा सकती जब तक कि संविधान का संशोधन न हो । कानून के अधीन सृजित अधिकरण को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदत्त नहीं की जा सकती जो न्यायपालिका को प्रदत्त संप्रभु कार्य की प्रकृति की है । अतः, लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाने के लिए और आगे बढ़ने के लिए अनुज्ञात करने के लिए ताकि लोगों में भरोसा और आस्था पैदा हो सके, विधायी और कार्यपालिक ज्यादतियों पर नियंत्रण के रूप में काम करने के लिए एक न्यायिक तंत्र बनाना होगा जैसाकि संविधान निर्माताओं द्वारा सोचा गया था । अधिकरण पर उच्च न्यायालय की अधीक्षण की भूमिका सोंपने की मूल में यही निहित है ।

8.11 **एम. बी. मजूमदार** बनाम **भारत संघ**[164] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने इस दलील को अस्वीकार कर दिया था कि अधिकरण अपनी सेवाशर्तों के संबंध में उच्च न्यायालयों के बराबर हैं। न्यायालय ने स्प-ट किया था कि सम्पत कुमार वाले मामले में (पूर्वोक्त) अधिनियम के अधीन अधिकरण को उच्च न्यायालयों के समकक्ष केवल इस सीमा तक रखा गया था कि अधिकरणों को सेवा मामलों में निर्णय करने के लिए उच्च न्यायालयों के प्रतिस्थानी के रूप में काम करना है ; अतः अधिकरण समस्त प्रयोजनों के लिए समतुल्यता की मांग नहीं कर सकते ।

8.12 यह प्रश्न कि क्या अधिकरणों को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का निर्वहन करते हुए उच्च न्यायालयों के प्रतिस्थानी कहा जा सकता है, **एल. चन्द्र कुमार** बनाम **भारत संघ** (उक्त) वाले मामले में पुनः विचारार्थ उठा था । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अपनी-अपनी अधिकारिता के भीतर सब न्यायालयों और अधिकरणों के विनिश्चयों पर न्यायिक अधीक्षण का प्रयोग करने के लिए उच्च न्यायालयों में निहित शक्ति संविधान के बुनियादी ढांचे की अंग है । उसमें यह मत व्यक्त किया गया था --

> ''वरि-ठ न्यायपालिका के न्यायाधीशों की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने वाले सांविधानिक रक्षोपाय अधीनस्थ न्यायपालिका के न्यायाधीशों को या उनको उपलब्ध नहीं हैं जो साधारण विधान द्वारा सृजित अधिकरणों में पीठासीन होते हैं । परिणामस्वरूप, अधिकरणों के न्यायाधीश कभी भी सांविधानिक निर्वचन का कार्य करते हुए वरि-ठ न्यायपालिका के पूर्ण और प्रभावी प्रतिस्थानी नहीं हो सकते । अतः हम अभिनिर्धारित करते हैं कि अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च

[164] ए. आई. आर. 1990 एस.सी. 2263.

न्यायालयों में निहित तथा संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय में निहित विधायी कार्य पर न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति संविधान का अभिन्न और अनिवार्य तत्व है और बुनियादी ढांचे का अंग है । अतः साधारणतया विधानों की सांविधानिक विधिमान्यता को परखने की उच्च न्यायालयों की और उच्चतम न्यायालय की शक्ति को कभी भी नि-कासित या अपवर्जित नहीं किया जा सकता ।

यदि संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन शक्ति जिसे संविधान का ''हृदय'' और ''आत्मा'' बताया गया है ''किसी अन्य न्यायालय'' को अतिरिक्त रूप से प्रदत्त की जा सकती है तो कोई कारण नहीं है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालयों को प्रदत्त अधिकारिता के संबंध में वहीं स्थिति कायम क्यों नहीं रह सकती । जहां तक अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालयों की अधिकारिता तथा अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय की अधिकारिता प्रतिधारित रखी जाती है, कोई कारण नहीं है कि संविधान के उपबंधों की कसौटी पर विधानों की विधिमान्यता को परखने की शक्ति अधिनियम के अधीन सृजित प्रशासनिक अधिकरणों को तथा संविधान के अनुच्छेद 323ख के अधीन सृजित अधिकरणों को प्रदत्त नहीं की जा सकती । स्मरण रहे कि अनुच्छेद 323क और 323ख से मिलने वाले प्राधिकार के अतिरिक्त, संसद् और राज्य विधानमंडल दोनों के पास उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की आरंभिक अधिकारिता में परिवर्तन करने की विधायी क्षमता है ।''

8.13 आयोग ने 'उच्च न्यायालयों और अन्य अपील न्यायालयों में विलंब तथा बकाया मामले' शी-र्क अपनी 79वीं रिपोर्ट में उच्च न्यायालयों में फाइल की गई और लंबित पड़ी विभिन्न कार्यवाहियों के संबंध में बकाया मामलों से संबंधित स्थिति पर अपनी चिंता व्यक्त की थी । यह मत व्यक्त किया गया था कि समाज की बढ़ती जरूरतों को पूरा करने के लिए त्वरित न्याय होना चाहिए तथा यह राज्य और उसके नागरिकों के हित में है कि विवादों का निपटारा यथासंभव शीघ्र हो । आयोग ने विलंब के प्रश्न पर विभिन्न समितियों की सिफारिशों पर विचार किया तथा 'उच्चतर न्यायपालिका की संरचना और अधिकारिता' पर अपनी 58वीं रिपोर्ट पर भी ध्यान दिया जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि उच्च न्यायालयों में बकाया मामलों की संख्या घटाने की अपरिहार्य जरूरत है ।

8.14 भारत के विधि आयोग ने अपनी 162वीं रिपोर्ट में सिफारिश की थी कि उच्च न्यायालय में अपील अवश्यमेव खंड न्यायपीठ द्वारा सुनी जाने का उपबंध किया जाए । इसके अनुकल्प में आयोग ने सिफारिश की कि रा-ट्रीय अपील प्रशासनिक अधिकरण का गठन किया जाए जिसका अध्यक्ष या तो उच्च न्यायालय का पूर्व मुख्य न्यायमूर्ति हो या उच्चतम न्यायालय का पूर्व न्यायाधीश हो । आयोग ने यह भी सिफारिश की थी कि अन्य सदस्य या तो उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश हों या उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त मुख्य न्यायमूर्ति । आगे मत व्यक्त किया गया था कि उच्च न्यायालय द्वारा या अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय में अपील के द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन के रूप में प्रशासनिक अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध उपबंधित उपचार में समय और धन ज्यादा खर्च होगा ।

8.15 इसी प्रकार, अपनी 215वीं रिपोर्ट में आयोग ने एल. चन्द्र शेखर वाले निर्णय को उच्चतम

न्यायालय की वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा पुनः विचार की सिफारिश की और अपील अधिकरण के लिए उपबंध करने के लिए उपयुक्त संशोधन का सुझाव दिया । यह मत व्यक्त किया गया कि उच्च न्यायालय राज्य का सर्वोच्च न्यायालय होने के नाते उसमें व्यापक अपीली और विस्तृत आरंभिक अधिकारिता हो जिसे न्याय की गुणवत्ता घटाये बिना नियंत्रित किया जाए या उसकी कटौती की जाए । संविधान के उपबंधों तथा एल. चंद्रशेखर वाले मामले में की गई मताभिव्यक्तियों के विश्ले-ाण पर आयोग की राय थी कि ''अपील अधिकरण की स्थिति व्यावहारिक दृ-टि से उच्च न्यायालय की स्थिति से ऊंची होगी किंतु उच्चतम न्यायालय की स्थिति से नीचे होगी ।''

8.16 **केंद्रीय विद्यालय संगठन** बनाम **सुभा-ा शर्मा**[165] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अधिकरण के विनिश्चय को चुनौती देने के लिए परिवादी सीधे उच्चतम न्यायालय में नहीं जा सकते और न ही वे उच्च न्यायालय को अलग छोड़ सकते हैं । उच्च न्यायालय को प्रशासनिक अधिकरणों पर पर्यवेक्षणीय शक्तियां प्राप्त हैं । लेकिन इस स्थिति से एक ओर उच्च न्यायालय का बोझ बढ़ जाता है तथा सेवा के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के बकाया मामलों का बोझ कम करने में मदद मिलती है और भारी खर्चे के बिना निकट परिसर में ही उपचार मिल जाता है ।

8.17 विवादों का न्यायनिर्णयन करने या सेवा मामलों में कोई परिवाद ग्रहण करने से सभी सिविल न्यायालयों के साथ-साथ उच्च न्यायालयों की अधिकारिता को अपवर्जित करने का विधायी आशय धारा 28[166] समेत प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के सुसंगत उपबंधों में अभिव्यक्त है । प्रज्ञा के सिद्धांत स्वरूप अपील का अधिकार कानून की सृ-टि है और इसका दावा साधिकार नहीं किया जा सकता । अपील का अधिकार सांविधानिक ढांचे के भीतर विद्यमान रहेगा । इसका सृजन पक्षकारों की मौनानुकूलता से या न्यायालय के आदेश से सृ-ट नहीं किया जा सकता । वह न तो नैसर्गिक है और न ही अंतर्निहित अधिकार है जो कक्षीकार से संबद्ध हो, क्योंकि यह एक अधि-ठायी, कानूनी अधिकार है ।[167] अधिकारिता मात्र स्वीकृति, मौनानुकूलता, सम्मति या किसी अन्य माध्यम से प्रदत्त नहीं की जा सकती क्योंकि इसे विधानमंडल द्वारा ही प्रदत्त किया जा सकता है ; क्योंकि न्यायालय या प्राधिकरण को अधिकारिता प्रदत्त करना विधायी कार्य है ।[168] अपील के अधिकार पर शर्तें लगाई जा सकती हैं ।[169]

8.18 उच्च न्यायालय को छोड़कर निकलने या उसे ऐसे विवाद को ग्रहण करने से विवर्जित करने से जिसमें किसी विधि की सांविधानिक विधिमान्य का प्रश्न अंतर्वलित हो, सीधे बुनियादी ढांचे पर प्रहार करना होगा । यह व्यथित पक्षकार को सांविधानिक उपचार से इनकार करने के समान होगा । उच्च न्यायालयों में निहित न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति तब और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है जब एक पक्षकार के रूप में राज्य संबंधी मामलों की संख्या बहुत ज्यादा होती है ।

---

[165] (2002) 4 एस.सी.सी. 145.

[166] पूर्वोक्त नोट 5 पृ. 532.

[167] युनाईटेड कमर्शियल बैंक लि. ब. उनके कर्मकार, ए.आई.आर. 1951 एस. सी. 230 ; कोंडिबा डागडू कोडम ब. साबित्री बाई सोपन गुजर, ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 2213 ; और उत्तर प्रदेश पावर कारपोरेशन लि. ब. बीरेन्द्र लाल, (2013) 10 एस.सी.सी. 39.

[168] भारत संघ ब. देवकी नंदन अग्रवाल, ए. आई. आर. 1992 एस.सी. 96.

[169] विजयप्रकाश डी. मेहता और जवाहर डी मेहता ब. कलक्टर सीमाशुल्क (निवारण) मुंबई, ए. आई. आर. 1988 एस.सी. 2010.

8.19 उच्च न्यायालयों के पास संविधान के अधीन अधिकरणों पर अधीक्षण और नियंत्रण की प्रश्नातीत शक्ति है । फिर भी भाग IXV -क के अंतर्गत अनुच्छेद 323-क और 323ख में अध्यारोही प्रभाव उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन अधीक्षण की शक्ति से वंचित नहीं कर सकता । उच्चतम न्यायालय के सिवाय सब न्यायालयों की अधिकारिता के अपवर्जन से यह अभिप्रेत नहीं हो सकता कि उच्च न्यायालय में निहित न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति अपवर्जित है ।

8.20 एल. चन्द्र कुमार वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 323क के खंड 2(घ) और अनुच्छेद 323ख के खंड 3(घ) को असांविधानिक घोनित किया । ये दोनों खंड अनुच्छेद 226, 227 के अधीन उच्च न्यायालयों की और संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता को अपवर्जित करते हैं । न्यायालय ने अभिव्यक्त रूप से यह मत व्यक्त किया --

> ''99..... अधिनियम की धारा 28 और अनुच्छेद 323क तथा अनुच्छेद 323ख के अधीन अधिनियमित अन्य सभी विधानों के खंड उसी मात्रा तक असांविधानिक होंगे । संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालयों को प्रदत्त तथा अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय को प्रदत्त अधिकारिता हमारे संविधान के अलंघ्य बुनियादी ढांचे के अंग हैं । जब कि इस अधिकारिता को बेदखल नहीं किया जा सकता, अन्य न्यायालय और अधिकरण संविधान के अनुच्छेद 226/227 और अनुच्छेद 32 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का निर्वहन करते हुए अनुपूरक भूमिका निभा सकेंगे । संविधान के अनुच्छेद 323क और 323ख के अधीन सृ-ट अधिकरण कानूनी उपबंधों और नियमों की सांविधानिक विधिमान्यता को परखने की क्षमता रखते हैं । फिर भी इन अधिकरणों के सभी विनिश्चयों की उस उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष संवीक्षा की जा सकेगी जिसकी अधिकारिता के अंतर्गत संबंधित अधिकरण है ।''..... ।

8.21 आयोग का मत है कि उस लक्ष्य को हासिल करने की खातिर जिसके लिए अधिकरण स्थापित किए गए हैं अर्थात् न्यायालयों का बोझ हल्का करने के लिए, यह वांछनीय है कि केवल उन मामलों में जिनमें अधिकरण को स्थापित करने वाले कानून में उक्त अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध अपील की सुनवाई के लिए अपील अधिकरण की स्थापना के लिए कोई उपबंध नहीं है, वहां उच्च न्यायालय में अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध अपील की जा सकेगी । अधिकरण से या उसके अपील मंच से पारित प्रत्येक आदेश, जहां वह है, अंतिमता प्राप्त कर लेता है । ऐसे किसी आदेश को व्यथित पक्षकार द्वारा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष चुनौती दी जा सकेगी जिसे उस अधिकरण या उसके अपील मंच पर क्षेत्रीय अधिकारिता प्राप्त है ।

8.22 इस धारा के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए यह आवश्यक होगा कि स्थापित किए गए अपील अधिकरण विवेकपूर्ण ढंग से काम करे और ऐसे अपील अधिकरणों का गठन उच्च न्यायालयों के समकक्ष किया जाए तथा इन अधिकरणों में नियुक्त सदस्यों के पास वही अर्हताएं हों जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के पास होती हैं ।

8.23 यदि अपील अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध अपील संबंधित उच्च न्यायालय के समक्ष नेमी ढंग से लाई जाती है तो अधिकरण स्थापित करने का संपूर्ण प्रयोजन विफल हो जाएगा । अतः आयोग का मत है कि ऐसे अपील अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध व्यथित पक्षकार लोक और रा-ट्रीय महत्व के आधारों पर उच्चतम न्यायालय में जाने में समर्थ होना चाहिए न कि किसी अन्य प्राधिकरण के समक्ष । विभिन्न अधिनियमों के अधीन स्थापित अपील अधिकरण जहां संबंधित अधिनियम के अधीन गठित अधिकरण के आदेश के विरुद्ध अपील की जा सकती है, उपाबंध-V में वर्णित हैं ।

अध्याय 9

आनुकल्पिक तंत्र द्वारा सभी न्यायालयों की अधिकारिता का अपवर्जन और न्याय तक पहुंच

9.1 हमारे संविधान में न्याय तक पहुंच को मूल अधिकारों के ऊंचे धारातल पर रखा गया है । न्याय तक पहुंच न्यायालयों तक पहुंच का पर्यायवाची है । यह संविधान के अनुच्छेद 14 में अंतर्निहित है । यह अनुच्छेद विधि के समक्ष समता और विधि के समान संरक्षण की गारंटी देता है ।[170] सबसे निचले स्तर परव्यक्ति के लिए न्याय तक पहुंच को सुकर बनाने की दृ-टि से अधिकरण एक सीमित समय के भीतर न्यायनिर्णय करने के लिए बने हैं ।[171] न्याय का अधिकार संविधान के बुनियादी ढांचे का अभिन्न और अंतर्निहित अंग है । केपलेट्टी के अनुसार, इस प्रकार न्याय तक प्रभावी पहुंच को सर्वाधिक आधारभूत अपेक्षा के रूप में देखा जा सकता है - तंत्र का सर्वाधिक आधारभूत मानव अधिकार विधिक अधिकार की गारंटी देने के लिए तात्पर्यित है ।[172]

9.2 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340(1) के उपबंधों का निर्वचन करते समय उच्चतम न्यायालय ने **तारा सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[173] और **जनार्दन रेड्डी** बनाम **हैदराबाद राज्य**[174] वाले मामलों में अभियुक्त के विधिक सहायता पाने के अधिकार को माना किंतु यह लेखबद्ध नहीं किया कि उन मामलों के तथ्यों में उसके अभाव में विचारण दू-ित हो गया । **बशीर** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[175] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि हत्या के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अभियुक्त की दो-नसिद्धि इस आधार पर शून्य है कि न्यायमित्र को प्रतिरक्षा तैयार करने के लिए काफी समय नहीं दिया गया ।

9.3 उपरोक्त निर्णयों की दृ-टि से धारा 304 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में जोड़ी गई । उच्चतम न्यायालय ने बाद के मामलों में समान रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि अभियुक्त को काउंसेल का उपलब्ध न होना अथवा विचारण का संचालन करने में काउंसेलों की नि-प्रभावता किसी खास मामले में, न्याय पाने से बंचित करने के समान है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 304 और संविधान के अनुच्छेद 22(1) की दृ-टि से विधिक सहायता सारवान और सार्थक ढंग से दी जानी चाहिए ।[176] विधि के अनुसार यह अपेक्षित है कि न्यायालय अभियुक्त को निःशुल्क विधि सहायता पाने के उसके अधिकार के बारे में सूचित करे ।

---

[170] आई. एल. आई. (1956-2006) की स्वर्ण जयंती की पूर्व संध्या पर न्याय तक पहुंच वि-नय पर न्यायमूर्ति का ए. के. गांगुली का व्याख्यान ।

[171] कृ-णन जयंत के., कबड़ी श्रीस एन. और अन्य, ''ग्रेपलिंग एट द ग्रासरूट्स : एक्सेस टु जस्टिस ।इन इंडयाज लोअर टियर, 27 एच. एच. आर. जे. 156 (2014)

[172]. एम. केपलेट्टी ; एक्सेस टु जस्टिस 672 (1976). ए

[173] ए. आई. आर. 1951 एस. सी. 441.

[174] ए. आई. आर. 1951 एस. सी. 217.

[175] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 1313.

[176] माधव हयावाधन राव हस्कोट ब. महारा-ट्र राज्य, ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1548, हुसैनारा खातून ब. गृह सचिव, बिहार राज्य, ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1369, मोह. हुसैन उर्फ जुल्फिकार अली ब. राज्य (रा-ट्रीय राजधानी क्षेत्र सरकार) दिल्ली, (2012) 9 एस. सी. सी. 408, तथा अशोक देबबरमा उर्फ अचक देबबरमा ब. त्रिपुरा राज्य, (2014) 4 एस.सी.सी. 747.

9.4 संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा अनुच्छेद 39क राज्य की नीति के निदेशक तत्व के रूप में समावि-ट किया गया और परिणामस्वरूप विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 यह सुनिश्चित करने के लिए अधिनियमित किया गया कि न्याय पाने के अवसरों से किसी नागरिक को उसकी किसी निर्योग्यता के कारण वंचित नहीं किया जा सकता । न्यायपाने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 और 22(1) से प्रोदभूत होता है ।[177]

9.5 धरातल के आधार पर 'न्याय तक पहुंच' का वास्तविक अर्थ 'न्याय तक पहुंच 2016' पर रिपोर्ट में संक्षिप्त रूप में वर्णित है, जिसके सुसंगत भाग में यह उपबंधित है कि, ''न्याय तक पहुंच तभी सार्थक होती है जब प्रत्येक नागरिक न्यायालय तक शीघ्र पहुंच सके और यह तभी संभव होगा जब न्यायालयों की संख्या बढ़ाई जाए । प्रारंभ में यह आवश्यक है कि प्रत्येक नागरिक को अपने निवास से 50 किलोमीटर के घेरे में प्रथम बार का न्यायालय सुलभ हो अथवा अधिकतम आधा दिन यात्रा करनी पड़े'' ।[178] न्याय तक पहुंच के बारे में यह नहीं समझा जाना चाहिए कि यह केवल भौगोलिक रूप में ही सुगम है । **भाबाभाई भादाभाई मारु** बनाम **धंधुका नागर पंचायत**[179] वाले मामले में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि न्यायिक प्रक्रिया तक प्रभावकारी पहुंच विधिसम्मत शासन का एक गतिशील यथार्थ है, और यह मत व्यक्त किया कि --

> ''न्याय तक पहुंच, सिविल, दांडिक और अन्य का लोकतंत्रीकरण, मानवीकरण और नागरिकों के लिए सब दरवाजे, विधि न्याय के बंधनों के बिना जो मार्ग में बाधक बनते हैं और आरंभ में तथा ऊंचे स्तरों पर प्रवेश में रोड़ा अटकाते हैं और विभिन्न प्रतिबंधों का प्रयोग करते हैं, खुले हों ।''

9.6 उच्चतम न्यायालय ने बराबर यही अभिनिर्धारित किया है कि न्याय तक पहुंच एक मूल अधिकार ही नहीं है बल्कि एक अच्छा मानव अधिकार है और मूल्यवान अधिकार है ।[180] सांविधानिक उपचार कक्षीकार को हमेशा उपलब्ध रहते हैं भले ही कानून के अंतर्गत कोई अन्य उपचार उपबंधित न हो क्योंकि इससे कानूनी उक्ति 'जहां अधिकार है वहां उपचार है' में अधि-ठापित दर्शन का उल्लंघन होगा जिसका अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति उपचारहीन नहीं रह सकता ।[181]

9.7 न्याय तक पहुंच को मानव अधिकारों पर सार्वभौमिक घो-णा 1948 के अनुच्छेद 8 और 10 के अधीन मानव अधिकार माना गया है । सुसंगत उपबंध निम्न प्रकार हे --

> ''अनुच्छेद 8 : प्रत्येक व्यक्ति को संविधान या विधि द्वारा उसे प्रदत्त मूल अधिकारों का

---

[177] राजू उर्फ रमाकांत ब. मध्य प्रदेश राज्य, (2012) 8 एस. सी. सी. 553 ; तथा मोह. कासब उर्फ अबु मुजाहिद ब. महारा-ट्र राज्य, (2012) 9 एस. सी. सी. 1.

[178] रिपोर्ट आन सबोडिनट कोट्स आफ इंडिया : ए. रिपोर्टआन एक्सेस टु जस्टिस, 2016 http://ecourts.gov.in/sites/default/files/A%20Report%20on%20access%20to%20justice%202016.pdf पर उपलब्ध, (अंतिम बार 19.08.2017 को देखा गया)

[179] (1991) 2 जी. एल. आर. 1339.

[180] तमिलनाडु मर्केंटाइल शेयरहोल्डर्स वेल्फेयर एसोसिएशन ब. एस. सी. सेकर, (2009) 2 एस.सी. सी. 784 ; और भारतीय जीवन बीमा निगम ब. आर. सुरेश, (2008) 11 एस. सी. सी. 319.

[181] रामेश्वर लाल ब. नगरपालिका परि-द् टोंक (1996) 6 एस. सी.सी. 100, और लक्ष्मी देवी ब. बिहार राज्य, ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 2710.

उल्लंघन करने वाले कृत्यों के लिए सक्षम रा-ट्रीय अधिकरण द्वारा प्रभावी उपचार पाने का अधिकार होगा ।

अनुच्छेद 10 : प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों और बाध्यताओं के अवधारण में तथा अपने विरुद्ध किसी दांडिक आरोप के अवधारण में एक स्वतंत्र और नि-पक्ष अधिकरण द्वारा नि-पक्ष और सार्वजनिक सुनवाई के लिए पूर्ण समता से हकदार है ।''

9.8 द इंटरनेशनल कवनेंट आन सिविल एंड पोलिटिकल राइट्स, 1966 के अनुच्छेद 2(3) में निम्न प्रकार उपबंधित है --

''वर्तमान कवनेंट में प्रत्येक राज्य पक्षकार यह वचनबंध करता है :–

(क) यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई व्यक्ति जिसके अधिकारों या स्वतंत्रताओं का जो यहां इसमें मान्य हैं, उल्लंघन किया जाता है, प्रभावी उपचार प्राप्त करेगा, भले ही उल्लंघन उन व्यक्तियों द्वारा किया गया हो जो शासकीय हैसियत में कार्रवाई कर रहे थे ;

(ख) यह सुनिश्चित करने के लिए कि ऐसे उपचार का दावा करने वाला तथा न्यायिक उपचार की संभावनाओं को विकसित करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति राज्य के विधिक तंत्र द्वारा उपबंधित सक्षम न्यायिक ; प्रशासनिक या विधायी प्राधिकरण अथवा किसी अन्य सक्षम प्राधिकरण से अपने अधिकार को अवधारित कराएगा ;

(ग) यह सुनिश्चित करने के लिए कि सक्षम प्राधिकरण, मंजूर होने पर, ऐसे उपचारों को प्रवर्तित कराएगा ।''

9.9 **अनीता कुशवाहा** बनाम **पु-प सुडान**[182] वाले मामले में न्यायालय ने घो-णा की, कि 'न्याय तक पहुंच' अनुच्छेद 14 और 21 में विवक्षित है, और यह मत व्यक्त किया :

''न्याय तक पहुंच भारत तथा पूरी दुनिया में सभी सभ्य समाजों में जीने के अधिकार का अभिन्न अंग मानी जाती है और माना गया है कि यह अधिकार इतना आधारभूत और असंक्राम्य है कि कोई भी शासन प्रणाली इसकी उपेक्षा नहीं कर सकती, अपने नागरिकों को इससे इनकार तो कोई कर ही नहीं सकता ।..... पिछली शताब्दियों में न्यायालयों के निर्णयों द्वारा कॉमन लॉ के मूलभूत सिद्धांतों के विकास में न्याय तक पहुंच की मूलभूत और असंक्राम्य मानव अधिकार के रूप में स्वीकृति में सबने योगदान किया है जिसे सभी सभ्य समाजों और प्रणालियों ने मान्य किया और प्रवर्तित किया है ।''

9.10 न्याय तक पहुंच पर बल देते हुए उच्चतम न्यायालय ने **हुसैनारा खातून** बनाम **गृह सचिव, बिहार राज्य**[183] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया कि आर्थिक और सामाजिक नियोग्यता से ग्रस्त व्यक्ति को निःशुल्क विधिक सहायता अनुच्छेद 21 के अधीन नि-पक्ष, युक्तियुक्त और न्यायसंगत प्रक्रिया की अनिवार्य पूर्व अपेक्षा है । **नगरपालिका परि-द्, रतलाम** बनाम **वरधी चंद**[184]

---

[182] ए. आई.आर. 2016 एस.सी. 3506.

[183] ए. आई. आर. 1979 एस.सी. 1369.

[184] (1980) 4 एस.सी. सी. 162.

वाले मामले में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया --

"सामाजिक न्याय लोगों को देय है अतः लोग दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 133 में मजिस्ट्रेट जैसे किसी भी लोक प्राधिकारी में अपने फायदे के लिए निहित अधिकारिता को प्रवर्तित करने के योग्य अवश्य होने चाहिए । ऐसी शक्ति का प्रयोग करते हुए विकासशील देशों की अवस्था से आवश्यक और संविधान के अनुच्छेद 38 द्वारा अनुगृहीत न्याय तक पहुंच के व्यापक सिद्धांत के प्रति न्यायपालिका को अवगत अवश्य रहना चाहिए । इससे भारतीय लोक विधि प्रो. कोजिमा के शब्दों में अपनी संसाधन शाखा में आ जाती है -- "तात्कालिक जरूरत आम आदमी - कोई कह सकता है, छोटे आदमी पर ध्यान केंद्रित करने की ...." केपलेट्टी और बी. गर्थ द्वारा 'एक्सेस टु जस्टिस' में नये परिवर्तन का सारांश इस प्रकार दिया गया है :–

"इस तात्कालिक जरूरत की मान्यता से "प्रक्रियात्मक न्याय" की संकल्पना में एक मूलभूत परिवर्तन परिलक्षित होता है ।..... प्रक्रियात्मक न्याय के प्रति नया दृ-टिकोण वैसे परिलक्षित होता है जिसे प्रो. एडोल्फ हेमवर्गर ने "सिविल प्रक्रिया द्वारा सेवित मूल्यों के अनुक्रम में एक क्रांतिकारी परिवर्तन" कहा है ; सर्वोपरि चिंता "सामाजिक न्याय" के साथ बढ़ती जाती है अर्थात् ऐसी प्रक्रिया ढूंढना जो जनसाधारण के अधिकारों के अनुसरण और संरक्षण में सहायक हो । जबकि उदाहरण के लिए, इस परिवर्तन की विवक्षाएं जहां तक न्यायनिर्णायक की भूमिका का संबंध है, शुरू में इस पर बल दिया जाना चाहिए कि अधिक पारंपरिक प्रक्रियात्मक न्याय के मूलभूत मूल्य प्रतिधारित किए जाएं । "न्याय तक पहुंच" के अंतर्गत दोनों प्रकार का प्रक्रियागत न्याय समावि-ट होना चाहिए ।"

9.11 **गुजरात ऊर्जा विकास निगम लि.** बनाम **एस्सार पावर लि.**[185] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया "इस न्यायालय में सीधे अपील का परिणाम उच्च न्यायालय में पहुंचने से वंचित करना है । इस प्रकार ऐसे अधिकरण उच्च न्यायालयों के प्रतिस्थानी ऐसे अधिकरणों में वही रीति अपनाए बिना बन जाते हैं जो उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति की रीति है ।"

9.12 व्यापक सिद्धांत के रूप में रिट न्यायालय में पहुंचने से पहले संपूर्ण कानूनी उपचार ले लेने चाहिए । फिर भी रिट न्यायालय याचिका ग्रहण कर सकते हैं यदि सारवान अन्याय हुआ है, होना संभाव्य है या न्याय का मूलभूत सिद्धांत भंग हुआ है । रिट मंजूर करते समय, समान रूप से प्रभावकारी, पर्याप्त और उपयुक्त विधिक उपचार का अस्तित्व विचारणीय मुद्दा है । स्वअधिरोपित संयम के सिद्धांत के अंतर्गत रिट न्यायालय याचिका को ग्रहण करने से इनकार कर सकेगा यदि उसका समाधान हो जाता है कि पक्षकारों को अपील या पुनरीक्षण न्यायालय में जाना चाहिए या विधि की त्रुटि मात्र को सुधारने के लिए कहा जाना चाहिए जिससे व्यापक अर्थ में और साधारण अर्थ में अन्याय नहीं होता जब तक कि आदेश पूर्णतः त्रुटिपूर्ण न हो या अधिकारिता के या याची के

---

[185] (2016) 9 एस. सी. सी. 103.

मूल अधिकार के अतिलंघन के मुद्दे उत्पन्न न करता हो ।[186] **हिमाचल प्रदेश राजय** बनाम **राजा महेन्द्र पाल**[187] वाले मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि आनुकल्पिक प्रभावकारी उपचार के अस्तित्व में होते हुए भी न्यायालय विशि-ट और विशे-ा तथ्यों में नागरिक को समुचित अनुतो-ा प्रदान करने से विवर्जित नहीं है । उक्त अनुच्छेद के अधीन अधिकारिता का सहारा लेते समय उच्च न्यायालय को निदेश जारी करने से पूर्व विशे-ा परिस्थितियों का होनाध्यान में रखना चाहिए ।"

9.13 हरवंश लाल साहनिया बनामू **इंडियन आयल कारपोरेशन लि.**[188] में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि आनुकल्पिक उपचार उपलब्ध होने से रिट अधिकारिता के अपवर्जन का सिद्धांत विवेकाधिकार का सिद्धांत है, बाध्यता का नहीं । न्यायालय को मामले के सभी पहलुओं पर विचार करना चाहिए और फिर हस्तक्षेप करना चाहिए यदि उसका नि-कर्-ा है कि किसी भी मूल अधिकार के प्रवर्तन की रिट द्वारा अपेक्षा है ; जहां नैसर्गिक न्याय का सिद्धांत असफल रहा हो या जहां आदेश या कार्यवाहियां पूर्णतः अधिकारिता रहित हो या अधिनियम की शक्ति को चुनौती दी जाए या आदेश पूर्णतः त्रुटिपूर्ण हो या याची के मूल अधिकार का अतिलंघन हुआ हो ।[189]

9.14 सिविल प्रकृति की शिकायत वाले कक्षीकार को सक्षम अधिकारिता के न्यायालय में वाद संस्थित करने का अधिकार है जब तक कि उसका संज्ञान अभिव्यक्त रूप से या विवक्षित तौर पर वर्जित न हो (धारा 9, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908) किंतु अधिकारिता को बेदखल करने की ऐसी शक्ति का प्रयोग किसी कार्यपालक आदेश द्वारा नहीं किया जा सकता । किसी कानून में ऐसा अभिव्यक्त उपबंध हो सकता है जो उन मामलों की बाबत सिविल न्यायालय की अधिकारिता का विनिर्दि-ट तौर पर अपवर्जन करे जो अन्यथा उसकी अधिकारिता के अंदर हों । विवक्षित नि-कासन वहां भी होगा जहां किसी अभिव्यक्त उपबंध के बिना सिविल न्यायालय की अधिकारिता को वर्जित किया गया है । बहराल उपधारणा सिविल न्यायालय की अधिकारिता के पक्ष में की जाएगी । सिविल न्यायालय की अधिकारिता का विनिश्चय करने वाली विधि के उपबंध का अर्थान्वयन कड़ाई से किया जाना चाहिए । उसे स्थापित करना उस पक्षकार का काम है जो अधिकारिता को बेदखल करने की मांग कर रहा है । न्यायालय को अधिनियम की स्कीम एवं अभी-ट उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए सिविल न्यायालय की अधिकारिता पर विचार करना होगा और उसका अर्थ करना होगा । जहां कोई अधिनियम विशे-ा किसी अधिकार को सृ-ट करता है और ऐसे अधिकार के प्रवर्तन के लिए मंच का भी उपबंध करता है तथा सिविल न्यायालय की अधिकारिता को वर्जित करता है वहां नि-कासन को कायम रखना होगा । न्यायालय सिविल न्यायालय की अधिकारिता को सुगमता से अपवर्जित करने

---

[186] के. एस. रशीद और पुत्र ब. आयकर अन्वे-ाण आयोग, ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 207 ; संग्राम सिंह ब. निर्वाचन अधिकरण, कोटा, ए. आई. आर. 1955 एस.सी. 425 ; भारत संघ ब. टी. आर. वर्मा, ए. आई. आर. 1957 एस.सी. 882 ; उत्तर प्रदेश राज्य ब. मोहम्मद नूह, ए. आई. आर. 1958 एस.सी. 86 ; तथा थान सिंह नाथमल ब. कर अधीक्षक, ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 1419 को भी देखिए ।

[187] ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 1786.

[188] ए. आई.आर. 2003 एस.सी. 2120. वर्ल्पूल कारपोरेशन ब. रजिस्ट्रार आफ ट्रेड मार्क्स , मुंबई, ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 22.

[189] चम्पालाल वितानी ब. आयकर आयुक्त पश्चिम बंगाल, ए. आई. आर. 1970 एस.सी. 645.

का नि-क-र्ा नहीं निकाल सकता क्योंकि यह व्यापक सिद्धांत का एक अपवाद है।[190] **राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम** ब. **बाल मुकुन्द बैरवा**[191] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जहां सिविल न्यायालय की अधिकारिता अभिव्यक्त रूप से वर्जित है वहां भी आसानी से यह नि-क-र्ा नहीं निकाला जा सकता कि सिविल न्यायालय को कोई अधिकारितानहीं है । अधिकारिता का ऐसा नि-कासन सिद्ध किया जाना चाहिए । जहां अधिकारिता अभिव्यक्त रूपसे नि-कासित है वहां भी सिविल न्यायालय कुछ वि-नयों की बाबत अपनी अधिकारिता का प्रयोग कर सकताहै विशे-नकर तब जब कानूनी प्राधिकरण या अधिकरण अधिकारिता के बिना कार्यवाही करता है । उन अधिनियमों की सूची जिनमें सिविल न्यायालयों की अधिकारिता अपवर्जित/वर्जित है उपाबंध 6में अंकित है ।

9.15 जब कोई व्यक्ति किसी अधिकार को प्रवर्तित कराना चाहता है तो उसके पास विकल्प होता है कि वह अधिनियम के अधीनआगे जाए या सिविल न्यायालय में जाए । **प्रीमियर आटोमोबाइल्स लि.** बनाम **कमलेकर शांता राम वड़के आफ बाम्बे**[192] में यह मत व्यक्त किया था --

> "..... किंतु जहां औद्योगिक विवाद साधारण विधि या कामन लॉ के अधीन किसी अधिकार, बाध्यता या दायित्व को प्रवर्तित कराने के लिए है न कि अधिनियम के अधीन सृ-ट किसी अधिकार, बाध्यता या दायित्व को, तो आनुकल्पिक मंच वादी को एक अधिकार देता है कि वह या तो अधिनियम के अधीन तंत्र में आवेदनकरने के अपने उपचार का चुनाव करे या सिविल न्यायालय में जाए ।"

9.16 पूर्वोक्त विवेचन से यह स्प-ट है कि अधिकारिता के नि-कासन की उपधारणा नहीं की जा सकती और संदिग्धार्थता की स्थिति में वह निर्वचन जो अधिकारिता को कायम रखता है अधिमानतः अपनाना चाहिए । **धूलाभाई** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[193] वाले मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने, अन्य के साथ-साथ, कतिपय आधारों पर न्यायालय की अधिकारिता के अपवर्जन के लिए कुछ सिद्धांत गिनाए :–

1. यदि कानून में पर्याप्त उपचार उपबंधित हैं और विशे-न अधिकरण में उपलब्ध उपचार सामान्यतया सिविल न्यायालय में उपलब्ध उपचारों के समतुल्य हैं ।

2. सिविल न्यायालय अपनी अधिकारिता का प्रयोग कर सकेगा यदि अधिकरण अधिनियम

---

[190] फर्म और इलुरी सम्य्या चेट्टि ब. आंध्र प्रदेश राज्य, ए. आई. आर. 1964 एस.सी. 322 ; श्री वेदागिरी लक्ष्मी नरसिम्हा स्वामी टैम्पल ब. इंदुरू पट्टाभाई रानी रोड्डि, ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 781, देवाजी ब. गणपतलाल, ए. आई. आर. 1969, एस.सी. 560 ; श्रीमती गंगा बाई ब. विजय कुमार, ए.आई. आर. 1974 एस.सी. 1126, प्रकाश नारायन शर्मा ब. वर्मा शैल कोआपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी लि., ए. आई. आर. 2002 एस.सी. 3062 ; रमेश चंद अरदावलीय ब. अनिल पंजवानी, ए. आई. आर. 2003 एस.सी. 2508 ; चर्च आफ नार्थ इंडिया ब. लवजी भाई रतनजी भाई, ए. आई. आर. 2005 एस.सी. 2544, अब्दुल गफूर ब. उत्तराखंड राज्य, ए.आई. आर. 2009 एस.सी. 413, रमेश गोविन्द राम (मृत) विधि प्रतिनिधि के माध्यम से ब. सुग्रा हुमायुं मिर्जा वक्फ, ए. आई. आर. 2010 एस.सी. 2897 ; भंवर लाल ब. राजस्थान बोर्ड आफ मुस्लिम वक्फ (2014) 16 एस.सी. सी. 51 ; और गुजरात मेरिटाइम बोर्ड ब. जी.सी. पंड्या, (2015) 12 एस.सी. सी. 403 को भी देखिए ।

[191] (2009) 4 एस.सी. सी. 299.

[192] ए. आई. आर. 1975 एस.सी. 2238.

[193] ए. आई.आर. 1969 एस.सी. 78.

के उपबंधों का या न्यायिक प्रक्रिया के मूलभूत सिद्धांतों का अनुपालन करने में असफल रहता है । जहां सिविल न्यायालय की अधिकारिता कानून में अभिव्यक्त रूप से वर्जित है वहां भी संबंधित अधिनियम की स्कीम में अपर्याप्त उपचार सिविल न्यायालय की अधिकारिता को स्थिर रखने के आधार होंगे ।

3. जहां अधिकारिता का अपवर्जन विवक्षित प्रतीत होता है वहां भी अधिनियम की स्कीम का विश्ले-ण उपचारों की पर्याप्तता को अवधारित करने के लिए करना चाहिए और यह भी कि क्या अधिनियम में यह उपबंधित है कि उसमें से उद्‌भूत सब अधिकार और दायित्व संबंधित अधिनियम के अधीन गठित अधिकरण द्वारा अवधारित किए जाएंगे ।

9.17 आयोग का मत है कि जब कभी न्यायालय की अधिकारिता अपवर्जित की जाए तो उतना ही प्रभावकारी आनुकल्पिक तंत्र निचले स्तर पर उपबंधित किया जाना चाहिए ताकि कक्षीकारों का न्याय तक पहुंचना सुनिश्चित हो सके । अधिकरण की देश के विभिन्न भागों में न्यायपीठ होनी चाहिए ताकि हर भौगोलिक क्षेत्र के लोग न्याय तक आसानी से पहुंच सकें । न्यायालयों का बोझ कम करने के लिए और उन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु जिनके लिए वे स्थापित किए गए हैं, रा-ट्रीय अधिकरण की प्रादेशिक बैठकें तथा राज्यवार बैठकें होनी चाहिए ।

अध्याय 10

नि-क-र्ा और सिफारिशें

10.1 अधिकरण स्थापित करनेका एक अकाट्य कारण यह था कि न्यायालयों में असंख्य मामले लंबित थे और मामलों के निपटारे में विलंब हो रहा था । उसके उपचार स्वरूप, प्रशासनिक अधिकरणों के नाम से न्यायिककल्प संस्थाएं स्थापित की गई ताकि वे स्वतंत्र और विशे-ीकृत मंच के रूप में काम कर सकें । अधिकरण कम खर्चे पर शीघ्र न्याय सुलभ करवाएंगे । अधिकरणों द्वारा निर्वहन किए गए न्यायिक कार्यों को 'शक्तियों के पृथक्करण' के सिद्धांत की दृ-टि से, जो संविधान के बुनियादी ढांचे का अंग है, विशुद्ध रूपसे प्रशासनिक या कार्यपालक कार्यों से प्रभेदित किया जा सकता है । प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 स्वर्ण सिंह समिति रिपोर्ट (1976) को प्रभावी रूप देने के लिए बनाया गया था । उसमें उपबंध कियागया था कि अधिकरण के आदेश के विरुद्ध कोई पक्षकार अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय में जा सकता है और संविधान के अनुच्छेद 222/227 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता को अपवर्जित करसकता है । चोकसी समिति (1977) ने ढेर सारे लंबित कर मामलों में कार्यवाही करने के लिए उच्च न्यायालयों में विशे-ा कर न्यायपीठ गठित करने की वांछनीयता व्यक्त की थी ।

10.2 भारत के विधि आयोग ने अनवरत रूपसे सुझाव दिया था कि अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालयों की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग में न केवल ज्यादा समय लगने वाला है अपितु खर्चीला भी है और यह हमेशा संभावना रहती है कि विभिन्न उच्च न्यायालय एक ही कानूनी उपबंध कानिर्वचन भिन्न प्रकारसे करें । 215वीं रिपोर्ट (2008) में आयोग ने एक अनपेक्षित टिप्पणी की थी कि उच्च न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति उतनी अलंध्य नहीं हो सकती जितनी उच्चतम न्यायालय की है । ऐसी मताभिव्यक्ति के लिए कोई कारण या स्प-टीकरण नहीं दिया गया है और ऐसी टिप्पणी करने के लिए कोई आधारशिला नहीं रखी गई है । वस्तुतः न तो न्यायालय ने और न ही विधानमंडल ने ऐसी कोई राय व्यक्त की है 1 ऐसी मताभिव्यक्तियां स्वीकृत रूपसे एल. चंद्र कुमार वाले मामले (पूर्वोक्त) में सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा अधिकथित विधि के विपरीत हैं ।

10.3 उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्व निर्णयों में यह अभिनिर्धारित किया था कि अधिकरण उच्च न्यायालयों के प्रतिस्थानी हैं । अतः नियुक्ति की रीति, पात्रता, कार्यकाल और ऐसे अधिकरणों में आसीन व्यक्तियों के अन्य संरक्षण और विशे-ाधिकार वही होने चाहिएं जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के हैं । ऐसे व्यक्तियों को पूर्ण स्वातंत्रता होनी चाहिए जैसाकि न्यायपालिका की स्वतंत्रता के सिद्धांत के अनुसार अपेक्षित है । वह संविधान का बुनियादी तत्व है । आगे यह भी ध्यान रहे कि चूंकि पुनर्नियुक्ति का संस्था की स्वतंत्रता पर गहरा असर पड़ता है अतः उसे कार्यपालिका के असर से दूर रखा जाना चाहिए । अतः स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए पुनर्नियुक्ति अपवादस्वरूप होनी चाहिए, न कि सिद्धांत स्वरूप ।

10.4 दूसरी ओर, कुछ अन्य मामलों में उच्चतम न्यायालय का नि-क-र्ा था कि अधिकरण उच्च न्यायालयों के आनुकल्पिक या प्रतिस्थानी नहीं हो सकते । अधिकरण में पीठासीन व्यक्ति उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के समतुल्य समता या विशे-ाधिकारों का दावा नहीं कर सकते । तथापि एल. चन्द्र कुमार (उक्त) वाले मामले में सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने विल्कुल साफ शब्दों में यह

अभिनिर्धारित किया था कि अधिकरण उच्च न्यायालयों के अनुपूरक है न कि उनके प्रतिस्थानी ।

10.5 सदस्यों का चयन नि-पक्ष ढंग से किया जाना चाहिए । अतः यचन समिति का अध्यक्ष भारत सरकार का सचिव नहीं होना चाहिए जो हमेशा अधिकरण के समक्ष प्रत्येक मुकदमे में पक्षकार होता है । अधिवक्ताओं में से नियुक्त सदस्यों के सिवाय सदस्यों की पुनर्नियुक्ति अनपेक्षित है क्योंकि इसमें न्यायपालिका की स्वतंत्रता से समझौता करना पड़ता है । इसके अतिरिक्त, चयन प्रक्रिया में सरकारी अभिकरणों का शामिल होना इस कारण न्यूनतम होना चाहिए कि सरकार हर मामले में कक्षीकार होती है ।

10.6 उच्च न्यायालयों को प्रदत्त न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति वही है जो उच्चतम न्यायालय की है, जो संविधान का मूलभूत तत्व है, और उसे संविधान का संशोधन करके ही मांजा जा सकता है। सरकार ऐसा तंत्र उस जगह रख सकती है जो अधिकरण में पीठासीन व्यक्तियों की नियुक्ति के बारे में सभी मामलों का तथा उनकी सेवा शर्तों के उपबंधों का ध्यान रख सकती है । उच्चन्यायालय की अधिकारिता को, साधारणतया अनुच्छेद 136 के अधीन अधिकरण के आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में जाने का उपबंध करके इस कारण अलग नहीं छोड़ देना चाहिए कि उक्त अनुच्छेद अपील के लिए उपबंध नहीं करता बल्कि उच्चतम न्यायालय को यह विवेकाधिकार प्रदत्त करता है कि वह इजाजत दे या न दे । विशे-न इजाजत याचिकापर विचार समय-समय पर उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित नियत मानदंडों पर किया जाता है । इसके अतिरिक्त,सीधे उच्चतम न्यायालय में जाने का उपबंध करना और उच्च न्यायालय की अधिकारिता को अपवर्जित करना न्याय तक पहुंच के नागरिकों के मूल अधिकार के अतिक्रमण के समान होगा ।

10.7 नियुक्ति मानदंड पर विवेचन करते समय आयोग ने इस बात पर ध्यान दिया कि वर्तमान तंत्र के अंतर्गत अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यों की अर्हताओं, कार्यकाल और सेवा शर्तों में एकरूपता नहीं है । अतः यह महसूस किया गया कि तंत्र में परिवर्तन होना जरूरी है क्योंकि एकरूपता की कमी वर्तमान अधिकरण तंत्र के प्रभावी कामकाज में बड़ी चिंता का कारण बनी हुई है ।

10.8 अधिकरणों में केवल तकनीकी सदस्य नियुक्त किए जाने चाहिए और तभी किए जाने चाहिए जब विशे-ज्ञ की तकनीकी या विशे-न पहलु पर सेवा/सलाह अपेक्षित है । अधिकरण में वही व्यक्ति आसीन होने चाहिए जो विधि में अर्हित हों, न्यायिक प्रशिक्षण प्राप्त हों तथा पर्याप्त अनुभव रखते हों एवं सिद्ध योग्यता तथा नि-ठा रखते हों ।

सिफारिशें

10.9 कुछ अधिकरणों में लंबित मामलों से इस बात का पता चलता है कि अधिकरण स्थापित करने का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाया है । अध्याय 3 में वर्णित रूप में शासकीय स्तर पर उपलब्ध आंकड़ों से संतो-नजनक स्थिति दिखाई नहीं पड़ती । आयोग में विस्तृत चर्चा के प्रकाश में जिसका उल्लेख पूर्वगामी अध्यायों में किया गया है, आयोग, केंद्रीय सरकार के विचारार्थ निम्नलिखित सिफारिशें करता है, अर्थात्--

क. यदि उच्च न्यायालय की अधिकारिता अधिकरण में अंतरित की जाए तो नवगठित अधिकरण के सदस्यों के पास उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के समतुल्य अर्हताएं होनी चाहिए । इसी प्रकार, जहां अंतरित अधिकारिता और कार्यों का पालन और निर्वहन जिला न्यायाधीशों द्वारा किया जाता था वहां अधिकरण में नियुक्त सदस्यों के पास जिला न्यायाधीशों

की नियुक्ति के लिए अपेक्षित समतुल्य अर्हताएं होनी चाहिए ।

ख. अधिकरण में नियुक्त अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति ; कार्यकाल और सेवा शर्तों में एकरूपता होगी । अधिकरण में नियुक्तियां करते समय स्वाधीनता कायम रखी जाएगी ।

ग. अधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति के लिए एक चयन बोर्ड/समिति होगी जिसकी अध्यक्षता भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उसके नामनिर्देशिती के रूप में उच्चतम न्यायालय का कोई वर्तमान न्यायाधीश तथा केंद्रीय सरकार के दो नामनिर्देशिती जो भारत सरकार के सचिव से नीचे के पंक्ति के न हों, जो सरकार द्वारा नामनिर्देशित किए जाएंगे, करेंगे । प्रशासनिक सदस्य, लेखापाल सदस्य, तकनीकी सदस्य, विशे-ाज्ञ सदस्य या राजस्व सदस्य के चयन के लिए केंद्रीय सरकार के नामनिर्देशिती की अध्यक्षता में एक चयन समिति होगी जिसकी नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से की जाएगी ।

घ. अधिकरण का अध्यक्ष साधारणतया उच्चतम न्यायालय का पूर्व न्यायाधीश या किसी उच्च न्यायालय का पूर्व मुख्य न्यायमूर्ति होना चाहिए तथा न्यायिक सदस्य उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश या वे व्यक्ति होने चाहिए जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए अर्हित हों ।

यदि प्रशासनिक सदस्य अपेक्षित हों तो वे ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जिन्होंने भारत सरकार के सचिव का पद या केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार के अधीन कोई अन्य समकक्ष पद धारण किया हो तथा उसका वेतनमान कम से कम दो वर्-ा भारत सरकार के सचिव के वेतनमान के समतुल्य हो ; अथवा भारत सरकार के अपर सचिव का पद या केंद्रीय या राज्य सरकार के अधीन कोई अन्य समकक्ष पद धारण किया हो तथा उसका वेतनमान कम से कम तीन वर्-ा की अवधि तक भारतसरकार के अपर सचिव के वेतनमान के समतुल्य हो ।

विशे-ाज्ञ सदस्य/तकनीकी सदस्य/लेखापाल सदस्य योग्यता, नि-ठा और अनुभव वाले व्यक्ति होने चाहिए तथा उनके पास सुसंगत क्षेत्र में विशे-ा ज्ञान तथा कम से कम 15 वर्-ा का वृत्तिक अनुभव हो (जिसे अधिकरण की प्रकृति के अनुसार बढ़ाया जा सकता है) । न्यायिक सदस्यों के साथ-साथ तकनीकी विशे-ाज्ञ सदस्यों की नियुक्ति वहीं की जाए जहां अधिकरण का आशय ऐसे क्षेत्र की सेवा करना है जिसमें विशे-ाीकृत ज्ञान या विशे-ाज्ञता या वृत्तिक अनुभव आवश्यक है तथा अधिकारिता के प्रयोग में तकनीकी या विशे-ा पहलुओं पर विचार करना और उनके बारे में विनिश्चय करना अंतर्वलित है ।

ङ. अधिकरण में नियुक्ति करते समय यह सुनिश्चित किया जाए कि कार्य करने में स्वाधीनता बरती जाए । अध्यक्ष की सेवा के निबंधन और शर्तें ; अन्य भत्ते और प्रसुविधाएं ऐसी होंगी जो समय-समय पर पुनरीक्षित 2,50,000/- रुपए के वेतन का पद धारण करने वाले केंद्रीय सरकार के अधिकारी के लिए स्वीकार्य हों ।

अधिकरण के सदस्य की सेवा के निबंधन और शर्तें, अन्य भत्ते और प्रसुविधाएं ऐसी होंगी जो समय-समयपर पुनरीक्षित 2,25,000/- रुपए के वेतन का पद धारण करने वाले केंद्रीय सरकार के अधिकारी के लिए स्वीकार्य हों ।

अधिकरण के पीठासीन अधिकारी/सदस्य की सेवा के निबंधन और शर्तें, अन्य भत्ते और प्रसुविधाएं ऐसी होंगी (जिसे जिला न्यायाधीश की अधिकारिता और उसके कार्य अंतरित किए जाएं) जो जिला न्यायाधीश के तत्समान वेतन पाने वाले केंद्रीय सरकार के अधिकारी के लिए स्वीकार्य हों ।

च. अधिकरण में होने वाली रिक्तियां समय से, यथासंभव शीघ्र, अधिमानतः रिक्ति होने से 6 मास पहले प्रक्रिया आरंभ करके यथासंभव शीघ्र भरी जानी चाहिए ।

छ. अध्यक्ष तीन व-र्ा की अवधि तक या 70 व-र्ा की आयु का होने तक, जो भी पहले हो, पदधारण करे । जबकि उपाध्यक्ष और सदस्य तीन व-र्ा की अवधि तक या 67 व-र्ा की आयु का होने तक जो भी पहले हो, पद धारण करे । तंत्र का सुचारू रूप से काम करना सुनिश्चित करने के लिए अधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और अन्य सदस्यों की सेवा शर्तों में एकरूपता रखना समुचित होगा ।

ज. अधिकरण या उसके अपील मंच से जहां कहीं वह है निकलने वाला प्रत्येक आदेश अंतिमता प्राप्त कर लेता है । ऐसे किसी आदेश को उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष, जिसे अधिकरण या उसके अपील मंच पर क्षेत्रीय अधिकारिता प्राप्त है, व्यथित पक्षकार द्वारा चुनौती दी जा सकेगी ।

झ. सशस्त्र बल अधिकरण अधिनियम, 2007 की धारा 3(ण) के उपबंध कुछ मामलों को सशस्त्र बल अधिकरण की अधिकारिता से अपवर्जित करते हैं और उन मामलों में व्यथित पक्षकार रिट अधिकारिता में उच्च न्यायालय जा सकते हें । यह अधिनियम अनुच्छेद 227(4) के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता को अपवर्जित करता है किंतु अनुच्छेद 226 के अधीन नहीं करता । जिन मामलों में सशस्त्र बल अधिकरण की अधिकारिता है उनमें पक्षकारों को अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय जाने का अधिकार इस कारण प्राप्त हो कि अनुच्छेद 136 के अधीन उपचार कानूनी अपील के रूप में प्राप्त नहीं होता । यह मुद्दा उच्चतम न्यायालय की वृहत्तर न्यायपीठ के विचारार्थ लंबित है ।[194]

ञ. अधिकरण की न्यायपीठें देश के विभिन्न भागों में हों ताकि हर भौगोलिक क्षेत्र के लोगों की न्याय तक पहुंच आसानी से हो सके । आदर्श के रूप में अधिकरणों की शाखाएं उन सब स्थानों पर होनी चाहिए जहां उच्च न्यायालय स्थित हैं । सभी न्यायालयों की अधिकारिता के अपवर्जन की दशा में सबसे निचले स्तर पर उतना ही प्रभावकारी आनुकल्पिक तंत्र देना अनिवार्य है । वह अधिकरण विशे-ा के कार्य की मात्रा को देखते हुए राज्य स्तर की बैठकें उपबंधित करके सुनिश्चित किया जा सकता है । एक बार यह हो जाए तो न्याय तक पहुंच सुनिश्चित हो जाएगी ।

10.10 विधि आयोग यह समुचित समझता है कि अधिकरणों के समस्त कार्यों में एकरूपता सुनिश्चित करने की खातिर केंद्रीय सरकार अधिकरणों के कार्यकरण को मानीटर करने का काम एक केंद्रक एजेंसी को देने पर विचार करे जो विधि और न्याय मंत्रालय के तत्वावधान में काम करेगी ।

---

[194] भारत संघ ब. थामस वैद्यन एम. सिविल अपील सं. 532/2015 आदेश ता. 16.11.2015.

10.11 पैरा 1.22 में यथा वर्णित उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त तथापड़ताल के लिए आयोग को निर्देशित चिंताएं सुसंगत अध्यायों में विस्तृत विवेचन के रूप में व्यक्त की गई हैं ।

(i) प्रश्न सं. 1 की वि-नय-वस्तु को अध्याय 5 में उसके विभिन्न पहलुओं के विश्ले-ण सहित विवेचित किया गया है ; और समस्त सुसंगत सामग्री पर ध्यानपूर्वक विचार करके उसका उल्लेख सिफारिश क से छ में किया गया है । आयोग का सुदृढ़ मत है कि यदि इन सिफारिशों को कार्यान्वित किया जाएगा तो विधिसम्मत शासन सुदृढ़ होगा ।

(ii) जहां तक प्रश्न सं. 2 का और उसके विभिन्न आयामों का संबंध है इसकी चर्चा अध्याय सं. 7 में की गई है और उत्तर सिफारिश ज द्वारा दिया गया है । आयोग को इसमें कोई शंका नहीं है कि यदि इस सिफारिश को कार्यरूप दिया गया तो उच्चतम न्यायालय अपनी सांविधानिक भूमिका निभा पाएगा और उसके पास विधि के प्रश्न, रा-ट्रीय और लोक महत्व के सारवान सांविधानिक मुद्दों पर ध्यान देने के लिए काफी समय होगा तथा युक्तियुक्त समय के भीतर विनिश्चय देने में समर्थ हो पाएगा ।

(iii) प्रश्नसं. 3 की वि-नय-वस्तु की चर्चा अध्याय सं. 8 में की गई है । सिफारिश ञ में इसके बारे में कहा गया है कि यदि अधिकरणों की शाखाएं उन स्थानों पर खोल दी जाएं जहां उच्च न्यायालय स्थित हैं तो न्याय तक पहुंच के अधिकार पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

(iv) इस अगले प्रश्न का उत्तर देने के लिए कि क्या न्याय तक पहुंच के लिए उतना ही प्रभावकारी आनुकल्पिक तंत्र स्थापित किए बिना सभी न्यायालयों की अधिकारिता को अपवर्जित करना वांछनीय है, आयोग ने, अध्याय सं. 9 में विस्तृत विवेचन के पश्चात् सिफारिश झ के रूप में उसपर विचार किया है जिसमें यह कहा गया हे कि किसी न्यायालय की अधिकारिता को उसका अपवर्जन करके हटाने से पूर्व उतना ही प्रभावकारी आनुकल्पिक तंत्र स्थापित करना हमेशा वांछनीय है ।

10.12 आयोग को बताया गया है कि जहां तक आनु-ंगिक या संसक्त मामलों का संबंध है वे उच्चतम न्यायालय के विचारार्थ लंबित हैं और इसीलिए इसप्रक्रम पर उन पर विचार करना समुचित नहीं होगा ।

आयोग तदनुसार सिफारिश करता है ।

ह0/-
(न्यायमूर्ति बी.एस.चौहान)
अध्यक्ष

ह0/-
(न्यायमूर्ति रवि आर. त्रिपाठी)
सदस्य

ह0/-
(प्रो. (डा.)शिव कुमार)
सदस्य

ह0/-
(डा.संजय सिंह)
सदस्य-सचिव

ह0/-
(सुरेश चंद्र)
सदस्य (पदेन)

ह0/-
(डा.जी. नारायन राजू)
सदस्य (पदेन)

उपाबंध - I

वित्त अधिनियम 2017 - द्वारा विलय किए गए अधिकरण

क्र.सं.	अधिकरणों का विलय - विलय के समय लंबित मामलों का ब्यौरा	वे अधिकरण /बोर्ड जिनमें विलय किया गया
1.	कर्मचारी भवि-य निधि अपील अधिकरण (श्रम और रोजगार मंत्रालय)	औद्योगिक अधिकरण
2.	प्रतिलिप्यधिकार बोर्ड	बौद्धिक संपदा अपील बोर्ड
3.	रेल रेट अधिकरण (रेल मंत्रालय)	रेल दावा अधिकरण
4.	विदेशी विनिमय अपील अधिकरण (विधि कार्य विभाग) लंबित मामलों की संख्या - 926	अपील अधिकरण
5.	रा-ट्रीय राजमार्ग अधिकरण (सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय)	विमानपत्तन अपील अधिकरण
6क.	साइबर अपील अधिकरण	दूरसंचार विवाद निपटारा और अपील अधिकरण
6ख.	विमान पत्तन आर्थिक विनियामक प्राधिकरण अपील अधिकरण	दूरसंचार विवादनिपटारा और अपील अधिकरण
7.	प्रतिस्पर्धा अपील अधिकरण (निगमित कार्य मंत्रालय) लंबित मामले - 62	रा-ट्रीय कंपनी अपील अधिकरण

उपाबंध -II

अधिकरणों के वि-नय में हटाए जाने के उपबंध

अधिकरण, अपील अधिकरण और अन्य प्राधिकरण, नियम 2017 के नियम 7 में अधिकरण के सदस्यों को हटाए जाने के लिए उपबंध हैं । ऐसे हटाए जाने के उपबंध नये नहीं हैं और अनेक अधिकरणों के संबंध में ये अधिनियमों/नियमों में पहले से विद्यमान थे । ऐसे कुछ उपबंध जो पहले से विद्यमान थे नीचे सूचीबद्ध हैं :

	अधिकरण का नाम	**हटाए जाने के उपबंधों का पाठ (नियम/धारा का उल्लेख करें जहां यह वर्णित है)**
1.	प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के अधीन केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण	अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य को रा-ट्रपति द्वारा इस आधार पर किए गए आदेश के सिवाय उसके पद से नहीं हटाया जाएगा कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा की गई जांच के बाद दुर्व्यवहार या असमर्थता साबित हो गई है जिसमें ऐसे अध्यक्ष या अन्य सदस्य को उस पर लगाए गए आरोपों की सूचना दे दी गई थी और उसे उन आरोपों के संबंध में सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर दिया गया था । [प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 9 की उपधारा (2)]
2.	रेल दावा अधिकरण अधिनियम, 1987 के अधीन रेल दावा अधिकरण	अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य को रा-ट्रपति द्वारा इस आधार पर किए गए आदेश के सिवाय उसके पद से नहीं हटाया जाएगा कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा की गई जांच के बाद दुर्व्यवहार या असमर्थता साबित हो गई है जिसमें ऐसे अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य को उस पर लगाए गए आरोपों की सूचना दे दी गई थी और उसे उन आरोपों के संबंध में सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर दिया गया था । [रेल दावा अधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 8 की उपधारा (2)]
3.	भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड अधिनियम, 1992 के अधीन प्रतिभूति	प्रतिभूति अपील अधिकरण के पीठासीन अधिकारी या किसी अन्य सदस्य को केंद्रीय सरकार द्वारा

	अपील अधिकरण	इस आधार पर किए गए आदेश के सिवाय उसके पद से नहीं हटाया जाएगा कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा की गई जांच के पश्चात् दुर्व्यवहार या असमर्थता साबित हो गई है जिसमें पीठासीन अधिकारी या अन्य सदस्य को उस पर लगाए गए आरोपों की सूचना दे दी गई थी और उसे उन आरोपों के संबंध में सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर दिया गया था । [भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड अधिनियम, 1992 की धारा 15-द की उपधारा (2)]
		केंद्रीय सरकार किसी भी सदस्य को पद से हटा देगी यदि वह -- (क) दिवालिया न्यायनिर्णीत है या किसी समय किया गया है ; (ख) विकृत चित्त है और सक्षम न्यायालय द्वारा इस प्रकार घोनित हुआ है ; (ग) किसी अपराध से सिद्धदो-न हुआ है जिसमें, केंद्रीय सरकार की राय में, नैतिक अधःपतन अंतर्वलित है ; [(घ).....] (ङ) केंद्रीय सरकार की राय में उसने अपने पद का दुरुपयोग इस प्रकार किया है कि उसका अपने पद पर बने रहना लोक हित के प्रतिकूल है : परंतु यह कि कोई सदस्य इस खंड के अधीन तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक कि मामले में उसे सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर न दे दिया गया हो । [भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड अधिनियम, 1992 की धारा 6]
4.	बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1983 के अधीन ऋण वसूली अधिकरण	अपील अधिकरण का अध्यक्ष केंद्रीय सरकार द्वारा इस आधार पर किए गए आदेश के सिवाय अपने पद से नहीं हटाया जाएगा कि अपील अधिकरण के अध्यक्ष की दशा में, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा की गई जांच के बाद उसके विरुद्ध दुर्व्यवहार या असमर्थता साबित हो गई है जिसमें अधिकरण के पीठासीन अधिकारी को उस पर लगाए गए आरोपों की सूचना दे दी गई थी

		और उसे उन आरोपों के संबंध में सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर दिया गया था । [बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 की धारा 15 की उपधारा (2)]
5.	बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 के अधीन ऋण वसूली अपील अधिकरण	अपील अधिकरण का अध्यक्ष इस आधार पर केंद्रीय सरकार द्वारा किए गए आदेश के सिवाय अपने पद से नहीं हटाया जाएगा कि अपील अधिकरण के अध्यक्ष की दशा में, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा की गई जांच के बाद दुर्व्यवहार या असमर्थता साबित हो गई है जिसमें ऐसे अध्यक्ष को उस पर लगाए गए आरोपों की सूचना दे दी गई थी और उसे उन आरोपों के संबंध में सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर दिया गया था । [बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (2)]
6.	भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण अधिनियम, 1994 के अधीन विमान पत्तन अपील अधिकरण	अधिकरण का अध्यक्ष इस आधार पर केंद्रीय सरकार द्वारा किए गए आदेश के सिवाय अपने पद से नहीं हटाया जाएगा कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा की गई जांच के बाद दुर्व्यवहार या असमर्थता साबित हो गई है जिसमें ऐसे अध्यक्ष को उस पर लगाए गए आरोपों की सूचना दे दी गई थी और उसे उन आरोपों के संबंध में सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर दिया गया था । [भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण अधिनियम, 1994 की धारा 28ञ की उपधारा (2)]
7.	भारतीय दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 के अधीन दूर संचार विवाद निपटारा और अपील अधिकरण	(1) केंद्रीय सरकार अपील अधिकरण के अध्यक्ष या किसी सदस्य को पद से हटा सकेगी, जो-- (क) दिवालिया न्यायनिर्णीत किया गया है ; या (ख) अपराध का सिद्धदो-ा ठहराया गया है जिसमें केंद्रीय सरकार की राय में नैतिक अद्यः पतन अतर्वलित है ; या (ग) अध्यक्ष या सदस्य के रूप में काम करने में शारीरिक या मानसिक तौर पर असमर्थ हो गया है ; या जिसने - (घ) ऐसा वित्तीय हित या अन्य हित अर्जित कर

		लिया है जिससे अध्यक्ष या सदस्य के रूप में उसके कार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है ; या (ङ) अपनी स्थिति का इस प्रकार दुरुपयोग किया है कि उसका पद पर बने रहना लोकहित के प्रतिकूल होगा । (2) उपधारा (1) में किसी बात को होते हुए भी, अपील अधिकरण का अध्यक्ष या सदस्य उस उपधारा के खंड (घ) या खंड (ङ) में विनिर्दि-ट आधार पर अपने पद से नहीं हटाया जाएगा जब तक कि केंद्रीय सरकार द्वारा उच्चतम न्यायालय को इस निमित्त किए गए निर्देश पर उसने अपने द्वारा की गई जांच पर ऐसी प्रक्रिया के अनुसार जैसी वह इस निमित्त विनिर्दि-ट करे, यह रिपोर्ट दी है कि वह अध्यक्ष या सदस्य ऐसे आधार या आधारों पर पद से हटाया जाना चाहिए । [भारतीय दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 की धारा 14छ की उपधारा (1) और (2)]
8.	व्यापार चिह्न अधिनियम , 1999 के अधीन अपील बोर्ड	अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य को उसके पद से इस आधार पर भारत के रा-ट्रपति द्वारा किए गए आदेश के सिवाय नहीं हटाया जाएगा कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा की गई जांच के बाद उसका दुर्व्यवहार या असमर्थता साबित हो गई है, जिसमें अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या अन्य सदस्य को उस पर लगाए गए आरोपों की सूचना दे दी गई हो और उसे उन आरोपों के संबंध में सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर दिया गया है । [व्यापार चिह्न अधिनियम, 1999 की धारा 89 की उपधारा (2)]
9.	कंपनी अधिनियम, 2013 के अधीन रा-ट्रीय कंपनी विधि (अपील) अधिकरण	(1) केंद्रीय सरकार, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से, ऐसे अध्यक्ष, सभापति या किसी सदस्य को पद से हटा सकेगी जो-- (क) दिवालिया न्यायनिर्णीत कर दिया गया है ; या (ख) किसी अपराध का सिद्धदो-ा ठहराया गया है

		जिसमें केंद्रीय सरकार की राय में नैतिक अधः पतन अंतर्वलित है ; या (ग) ऐसे अध्यक्ष, सभापति या सदस्य के रूप में काम करने में शारीरिक या मानसिक तौर पर असमर्थ हो गया है ; या जिसने - (घ) ऐसा वित्तीय हित या अन्य हित अर्जित कर लिया है जिससे ऐसे अध्यक्ष, सभापति या सदस्य के रूप में काम करने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना संभाव्य है ; या (ङ) अपनी स्थिति का इस प्रकार दुरुपयोग किया है कि उसके पद पर बने रहने से लोकहित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा : परंतु अध्यक्ष, सभापति या सदस्य को खंड (ख) से (ङ) में विनिर्दि-ट किन्हीं आधारों पर उसे सुनवाई या युक्तियुक्त अवसर दिए बिना हटाया नहीं जाएगा । (2) उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना अध्यक्ष, सभापति या सदस्य को उसके पद से केंद्रीय सरकार द्वारा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को किए गए निर्देश पर उनके द्वारा नामनिर्दि-ट उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश द्वारा की गई जांच के पश्चात् साबित दुर्व्यवहार या असमर्थता के आधार पर केंद्रीय सरकार द्वारा किए गए आदेश से ही पद से हटाया जाएगा जिसमें अध्यक्ष/सभापति या सदस्य को उस पर लगे आरोपों की सूचना दे दी गई हो और उसे सनुवाई का युक्तियुक्त अवसर दिया गया हो। (3) केंद्रीय सरकार, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से, उस अध्यक्ष, सभापति या सदस्य को जिसके संबंध में उपधारा (2) के अधीन उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को निर्देश किया गया है, पद से निलंबित कर सकेगी जब तक कि ऐसे निर्देश पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद केंद्रीय सरकार ने आदेश पारित न किया हो ।

		(4) केंद्रीय सरकार, उच्चतम न्यायालय से परामर्श करके उपधारा (2) में निर्दि-ट साबित दुर्व्यवहार या असमर्थता के आधार पर जांच प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए नियम बनाएगी । [कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 417]
10.	उपभोक्ता संरक्षण नियम, 1987 के अधीन रा-ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितो-ण आयोग	(1) केंद्रीय सरकार अध्यक्ष या सदस्य को पद से हटा सकेगी जो -- (क) दिवालिया न्यायनिर्णीत कर दिया गया है ; या (ख) किसी अपराध से सिद्धदो-न ठहराया गया है जिसमें केंद्रीय सरकार की राय में नैतिक अधः पतन अंतर्वलित है ; या (ग) अध्यक्ष या सदस्य के यप में काम करने में शारीरिक या मानसिक तौर पर असमर्थ हो गया है ; या जिसने - (घ) ऐसा वित्तीय या अन्य हित अर्जित कर लिया है कि अध्यक्ष या सदस्य के रूप में काम करने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना संभाव्य है ; या (ङ) अपनी स्थिति का इस प्रकार दुरुपयोग किया है जिससे उसका पद पर बने रहने से लोक हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा ; या (च) अपने नियंत्रण से परे के कारणों के सिवाय लगातार तीन बैठकों में अनुपस्थित रहा है । (2) उपनियम (1) में अंतर्वि-ट किसी बात के होते हुए भी, अध्यक्ष या किसी सदस्य को ऐसी प्रक्रिया के अनुसार जैसी केंद्र सरकार इस निमित्त विनिर्दि-ट करे और अध्यक्ष या सदस्य को ऐसे आधार का दो-ी पाए, केंद्रीय सरकार द्वारा की गई जांच पर के सिवाय उपनियम के खंड (घ), (ङ) और (च) में विनिर्दि-ट आधारों पर अपने पद से नहीं हटाया जाएगा । [उपभोक्ता संरक्षण नियम, 1987 का नियम 13]
11.	विद्युत अधिनियम, 2003 के अधीन विद्युत अपील अधिकरण	अपील अधिकरण के अध्यक्ष या अपील अधिकरण के सदस्य को उच्चतम न्यायालय के ऐसे न्यायाधीश द्वारा जिसे इस प्रयोजन के लिए केंद्रीय

		सरकार द्वारा नियुक्त किया जाए, की गई जांच के पश्चात् जिसमें संबंधित अपील अधिकरण के अध्यक्ष या सदस्य को उसके विरुद्ध आरोप सूचित कर दिए गए हों तथा ऐसे आरोपों के संबंध में सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दिया गया हो, साबित दुर्व्यवहार या असमर्थता के आधार पर केंद्रीय सरकार द्वारा किए गए आदेश द्वारा ही उसके पद से हटाया जाएगा । [विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 117 की उपधारा (2)]
12.	सशस्त्र बल अधिकरण अधिनियम, 2007 के अधीन सशस्त्र बल अधिकरण	अध्यक्ष या सदस्य को उच्चतम न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीश द्वारा की जांच केपश्चात् जिसमें ऐसे अध्यक्ष या सदस्य को उसके विरुद्ध आरोप सूचित कर दिए गए हों तथा ऐसे आरोपों के संबंध में सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दिया गया हो, साबित दुर्व्यवहार या असमर्थता के आधार पर रा-ट्रपति द्वारा किए गए आदेश द्वारा उसके पद से हटाया जाएगा । [सशस्त्र बल अधिकरण अधिनियम, 2007 की धारा 9 की उपधारा (2)]
13.	रा-ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 के अधीन रा-ट्रीय हरित अधिकरण	(1) केंद्रीय सरकार भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से, अधिकरण के अध्यक्ष या न्यायिक सदस्य को पद से हटा सकेगी जो - (क) दिवालिया न्यायनिर्णीत कर दिया गया है ; या (ख) किसी अपराध से सिद्धदो-ा ठहराया गया है ; या (ग) शारीरिक या मानसिक तौर पर असमर्थ हो गया है, या जिसने - (घ) ऐसा वित्तीय या अन्य हित अर्जित कर लिया है जिससे उसके कार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना संभाव्य है ; (ङ) अपनी स्थिति का इस प्रकार दुरुपयोग किया है जिससे उसके पद पर बने रहने से लोकहित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा ।

		(2) अध्यक्ष या न्यायिक सदस्य को उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश द्वारा की गई जांच के पश्चात् जिसमें ऐसे अध्यक्ष या न्यायिक सदस्य को उस पर लगाए आरोप सूचित कर दिए गए हों तथा उसे सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दिया गया हो, केंद्रीय सरकार द्वारा किए गए आदेश से ही पद से हटाया जाएगा । (3) केंद्रीय सरकार, अध्यक्ष या न्यायिक सदस्य को, जिसके संबंध में, उपधारा (2) के अधीन उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को जांच करने के लिए निर्देश किया गया है, पद से निलंबित कर सकेगी जब तक कि केंद्रीय सरकार ऐसे निर्देश पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा की गई जांच की रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद आदेश पारित नहीं कर देती है । (4) केंद्रीय सरकार उपधारा (2) में निर्दि-ट जांच प्रक्रिया को नियमों द्वारा विनियमित कर सकेगी। (5) विशे-ाज्ञ सदस्य को उपधारा (1) में विनिर्दि-ट आधारों पर और ऐसी प्रक्रिया के अनुसार जो केंद्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित की जाए, केंद्रीय सरकार के आदेश द्वारा पद से हटाया जा सकेगा : परंतु विशे-ाज्ञ सदस्य तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक कि उसे मामले में सुनवाई का अवसर न दिया गया हो । [रा-ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 की धारा 10]

उपाबंध -III

वे अधिकरण जिनके विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय में होती है

आयकर अधिनियम, 1961 (1961 का सं. 43)	धारा 252 (1) के अधीन स्थापित आयकर (अपील) अधिकरण	धारा 260क (1) के अधीन उच्च न्यायालय में अपील
सीमाशुल्क अधिनियम 1962 (1962 का सं. 52) वित्त अधिनियम 2003 द्वारा संशोधित	धारा 129(1) के अधीन गठित सीमाशुल्क, उत्पाद शुल्क और सेवाकर अपील अधिकरण	धारा 130(1) के अधीन उच्च न्यायालय में अपील
आयकर अधिनियम, 1961 (1961 का सं. 43)	धारा 245ख के अधीन गठित आयकर समझौता आयोग	धारा 260क के अधीन उच्च न्यायालय में अपील
धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 (2003 का सं. 15)	धारा 25 के अधीन स्थापित अपील अधिकरण	धारा 42 के अधीन उच्च न्यायालय में अपील
बेनामी संव्यवहार (प्रति-नेध) संशोधन अधिनियम, 2016 (2016 का सं. 43)	धारा 30 के अधीन गठित अपील अधिकरण	धारा 49(1) के अधीन उच्च न्यायालय में अपील
बेनामी संव्यवहार (प्रति-नेध) संशोधन अधिनियम, 2016 (2016 का सं. 43)	धारा 30 के अधीन गठित अपील अधिकरण	धारा 49 के अधीन उच्च न्यायालय में अपील

उपाबंध- IV

वे अधिकरण जिनके विरुद्ध अपील उच्चतम न्यायालय में होती है

क्रमांक	अधिनियम का नाम	अधिकरण/प्राधिकरण का नाम	वह धारा जिसके अधीन अपील उच्चतम न्यायालय में होती है
1.	रा-ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 (2010 का सं. 19)	धारा 3 के अधीन स्थापित रा-ट्रीय हरित अधिकरण	धारा 23
2.	भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड अधिनियम, 1992 (1992 का सं. 15)	धारा 15ट(1) के अधीन स्थापित प्रतिभूति अपील अधिकरण	धारा 15ल
3.	उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (1986 का सं. 68)	धारा 9 के अधीन स्थापित रा-ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितो-ण आयोग	धारा 23
4.	सशस्त्र बल अधिकरण अधिनियम, 2007 (2007 का सं. 55)	धारा 4 के अधीन स्थापित सशस्त्र बल अधिकरण	धारा 30
5.	विद्युत अधिनियम, 2003 (2003 का सं. 36)	धारा 110 के अधीन स्थापित विद्युत अपील अधिकरण	धारा 125
6.	आयकर अधिनियम, 1961 (1961 का सं. 43)	धारा 245ख के अधीन गठित आयकर समझौता आयोग	धारा 261
7.	भारतीय विमानपत्तन आर्थिक विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 2008 (2008 का सं. 27)	विमानपत्तन आर्थिक विनियामक प्राधिकरण अपील अधिकरण का विलय अब दूरसंचार विवाद निपटारा अपील अधिकरण में किया गया है	धारा 31
8.	दिवालियापन और दिवाला संहिता, 2016 (2016 का सं. 31)	धारा 410 के अधीन स्थापित रा-ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण	धारा 62(1)
9.	विद्युत अधिनियम, 2003	धारा 70 के अधीन स्थापित	धारा 125

	(2003 का सं. 36)	केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण	

उपाबंध- V

वे अधिकरण जिनके विरुद्ध अपील, अपील अधिकरणों/प्राधिकरणों में होती है

क्रमांक	अधिनियम का नाम	अधिकरण/प्राधिकरण का नाम	वह धारा जिसके अधीन अपील हो सकती है
1.	बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 (1993 का सं. 51)	धारा 3 के अधीन स्थापित ऋण वसूली अधिकरण	धारा 20 के अधीन ऋण वसूली अपील अधिकरण में अपील
2.	आयकर अधिनियम, 1961 (1961 का सं. 43)	धारा 245ख(1) के अधीन स्थापित आयकर समझौता आयोग	धारा 253 के अधीन अपील अधिकरण में अपील
3.	कंपनी अधिनियम, 2013 (2013 का सं. 18)	धारा 408 के अधीन स्थापित रा-ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण	धारा 421 के अधीन रा-ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण में अपील
4.	भारतीय विमानपत्तन आर्थिक विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 2008 (2008 का सं. 27)	धारा 3 के अधीन गठित विमानपत्तन आर्थिक विनियामक प्राधिकरण	धारा 17 के अधीन टी.डी.एस.ए.टी में अपील (ए. ई. आर. ए. ए. टी. का टी.डी. एस.ए.टी में विलय)
5.	भरतीय दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 (1997 का सं. 24)	धारा 3 के अधीन स्थापित भारतीय दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण	धारा 14 के अधीन दूरसंचार विवाद निपटारा और अपील अधिकरण में अपील
6.	प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002 (2002 का सं. 12)	धारा 7 के अधीन स्थापित भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग	धारा 53क के अधीन रा-ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण में अपील (प्रतिस्पर्धा अपील अधिकरण का विलय एन.सी. एल.ए.टी. में हुआ)
7.	भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड अधिनियम, 1992 (1992 का सं. 15)	धारा 3 के अधीन स्थापित भारतीय प्रतिभूति और विनियम बोर्ड	धारा 15न के अधीन प्रतिभूति अपील अधिकरण में अपील

8.	दिवालियापन और दिवाला संहिता, 2016(2016 का सं. 31)	धारा 188(1) के अधीन स्थापित भारतीय दिवालियापन और दिवाला बोर्ड	धारा 202 के अधीन रा-ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण में अपील
9.	चलचित्र अधिनियम, 1952 (1952 का सं. 37)	धारा 3 के अधीन स्थापित फिल्म प्रमाणन बोर्ड	धारा 5ग के अधीन फिल्म प्रमाणन अपील अधिकरण
10.	विद्युत अधिनियम, 2003 (2003 का सं. 36)	धारा 70 के अधीन स्थापित केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण	धारा 110 और 111 के अधीन विद्युत अपील अधिकरण में अपील
11.	धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 (2003 का सं.15)	धारा 6 के अधीन स्थापित न्यायनिर्णयन प्राधिकरण	धारा 26 के अधीन अपील अधिकरण में अपील
12.	वाणिज्य पोतपरिवहन अधिनियम, 1958 (1958 का सं. 44)	धारा 383 (1 और 3) के अधीन स्थापित सर्वेक्षण न्यायालय	आगे कोई अपील नहीं (किंतु धारा 387 के अधीन केंद्रीय सरकार द्वारा वैज्ञानिक व्यक्तियों को निर्देश)
13.	चलचित्र अधिनियम, 1952 (1952 का सं. 37)	धारा 5घ के अधीन स्थापित फिल्म प्रमाणन अपील अधिकरण	आगे कोई अपील नहीं (किंतु धारा 6 के अधीन केंद्रीय सरकार के पास पुनरीक्षण शक्ति)
14.	तटवर्ती जल संस्कृति प्राधिकरण अधिनियम, 2005 (2005 का सं. 24)	धारा 4 के अधीन स्थापित तटीय जल संस्कृति प्राधिकरण	आगे कोई अपील नहीं
15.	प्रेस परि-द अधिनियम, 1978 (1978 का सं. 37)	धारा 4 के अधीन स्थापित भारतीय प्रेस परि-द	आगे कोई अपील नहीं
16.	बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 (1993 का सं. 51)	धारा 8(1) के अधीन स्थापित ऋण वसूली अपील अधिकरण	आगे कोई अपील नहीं
17.	प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1956 (1956 का सं. 74	धारा 19 के अधीन स्थापित केंद्रीय विक्रय कर अपील प्राधिकरण/	आगे कोई अपील नहीं

		अधिकरण	

उपाबंध- VI

सिविल न्यायालयों की अधिकारिता को प्रवारित करने वाले अधिनियम

क्रमांक	अधिनियम का नाम	सिविल न्यायालय की अधिकारिता काअपवर्जन
1.	रा-ट्रीय राजमार्ग (भूमि और यातायात) नियंत्रण अधिनियम, 2002 (2003 का सं. 13)	धारा 15
2.	भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण अधिनियम, 1994 (1994 का सं. 55)	धारा 28ट(5)
3.	भारतीय दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 (1997 का सं. 24)	धारा 15 और 27
4.	सशस्त्र बल अधिकरण अधिनियम, 2007 (2007 का सं. 55)	धारा 33
5.	बैंकों और वित्तीय संस्थओं को शोध्य ऋण वसूली अधिनियम, 1993 (1993 का सं. 51)	धारा 18
6.	वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति ब्याज का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (2002 का सं. 54)	धारा 34
7.	आयकर अधिनियम, 1961 (1961 का सं. 43)	धारा 293
8.	व्यापार चिह्न अधिनियम, 1999 (1999 का सं. 47)	धारा 93
9.	माल के भौगोलिक संकेत (रजिस्ट्रीकरण और संरक्षण) अधिनियम, 1999 (1999 का सं. 48)	धारा 32
10.	भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड अधिनियम, 1992 (1992 का सं. 15)	धारा 15य और 20क
11.	मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का सं. 59)	धारा 94 और 175
12.	प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002 (2003 का सं. 12)	धारा 61

13.	रेल दावा अधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का सं. 54)	धारा 15
14.	तस्कर और विदेशी मुद्रा छल साधक (संपत्ति समपहरण) अधिनियम, 1976 (1976 का सं. 13)	धारा 14
15.	रेल अधिनियम, 1989 (1989 का सं. 24)	धारा 43
16.	विदेशी मुद्रा प्रबंध अधिनियम, 1999 (1999 का सं. 42)	धारा 34
17.	भारतीय विमानपत्तन आर्थिक विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 2008 (2008 का सं. 27)	धारा 28 और 44
18.	सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (2000 का सं. 21)	धारा 61
19.	कंपनी अधिनियम, 2013	धारा 430
20.	विद्युत अधिनियम, 2003 (2003 का सं. 36)	धारा 145
21.	दिवालियापन और दिवाला संहिता 2016 (1016 का सं. 31)	धारा 63, 180, 231
22.	धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 (2003 का सं. 15)	धारा 41 और 67
23.	बेनामी संव्यवहार (प्रति-नेध) अधिनियम, 1988 (1988 का सं. 45)	धारा 45
24.	रा-ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 (2010 का सं. 19)	धारा 29
25.	भौतिक संपदा (विनियमन और विकास) अधिनियम, 2016 (2016 का सं. 16)	धारा 79 के अधीन अधिकारिता का अपवर्जन
26.	बंधित श्रम पद्धति (उत्सादन) अधिनियम, 1976 (1976 का सं. 19)	धारा 25